GOVERNMENT OF INDIA
ARCHÆOLOGICAL SURVEY OF INDIA
CENTRAL ARCHÆOLOGICAL LIBRARY

ACCESSION NO. 9119

CALL No. 910.40954/Sul/Mah.

D.G.A. 79

OF ... ARCHAEOLOGY
...rary Regr No
INDIA.

Sulaimān Saudagar kā
jīvan-vivaraṇa

Tr. [illegible] by
Gaurishankar Hirachand
Ojha

Mahesh Prasad 'Sadhu'

देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला-३

संपादक—रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा

सुलैमान सौदागर

का

यात्रा-विवरण

9119

Sul/Mal

अनुवादक

महेशप्रसाद 'साधु,' मौलवी आलिम, मौलवी फ़ाज़िल,
अध्यापक, सेंट्रल हिंदू कालिज, हिंदू विश्वविद्यालय, काशी।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा
प्रकाशित

प्रथम संस्करण १०००] संवत् १९७८ [मूल्य १।)

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL
LIBRARY NEW DELHI.
Acc. No. 9119
Date 26-7-57
Call No. 910.40954
Sul/Mah

Printed by Bishweshwar Prasad,
at The Indian Press, Ltd., Benares-Branch.

भूमिका

भारतवर्ष और चीन देश के विषय में जो सामग्री मुसलमानों की लिखी पाई जाती है उसमें सबसे प्राचीन सामग्री अरबी भाषा में है। उसीका हिंदी अनुवाद मूल अरबी से पाठकों की भेंट कर रहा हूँ। यह मूल अरबी सुलैमान नामी एक मुसलमान सौदागर का यात्रा-विवरण है। मुसलमानी जगत् में भारत और चीन के विषय में इससे अधिक प्राचीन और कोई लेख पाया नहीं जाता, इस कारण इस यात्रा-विवरण का लेखक ही भारतवर्ष और चीन में पहला मुसलमान यात्री समझा जाता है। इसकी यात्रा कब और क्यों कर हुई इसका उत्तर पाठकों को 'प्रस्तावना' से भली भाँति मिल जावेगा।

देश में अच्छी अंग्रेज़ी जाननेवाले अनेक इतिहास-प्रेमी हैं। इनमें से कुछ लोगों ने थोड़े ही काल में अपनी देश-भाषा में अनेक इतिहास रचकर राष्ट्र भाषा के अनुराग का अच्छा परिचय दिया है तथा चीन, यूनान और फ्रांस आदि देशों के यात्रियों के यात्रा-विवरणों का अनुवाद अंग्रेज़ी अथवा मूल भाषा से अपनी भाषा में कर दिखाया है। पचास वर्ष से भी अधिक बीत चुके हैं कि इलियट लिखित इतिहास से सुलैमान के यात्रा-विवरण का पूरा परिचय हमारे

इतिहास प्रेमियों को मिल चुका है। इसके सिवा अंग्रेज़ी के एक और ग्रंथ से भी इसका पता कुछ चल जाता है। परंतु अभी तक इस यात्रा-विवरण का अनुवाद हमारे देश की किसी भी भाषा में नहीं किया गया। इस अवस्था में ईश्वर का कोटिशः धन्यवाद है कि मैं सारे यात्रा-विवरण का मूल अरबी भाषा से हिंदी भाषा में अनुवाद कर देने में समर्थ हुआ हूँ। मेरा विश्वास है कि अनेक पाठकों के लिये यह बात अवश्य विस्मयजनक होगी कि २०० वर्ष से भी अधिक हुए कि सन् १७१८ ई० में अरबी भाषा की मूल हस्तलिखित प्रति से ही इसका अनुवाद फ्रांसीसी भाषा में प्रकाशित हुआ था। बाद को सन् १८११ ई० में मूल ग्रंथ अरबी अक्षरों में छपा। सन् १८४५ ई० में फ्रांसीसी अनुवाद फिर शोधित रूप में प्रकाशित हुआ, जिसमें सन् १८११ ई० की छपी हुई सामग्री अनुवाद के साथ मिला दी गई और संपूर्ण ग्रंथ इस नाम से प्रकाशित हुआ—

RELATION
DES VOYAGES
FAITS
Par les Arabes et les Persans.
Dans L' Inde et A' La Chine

इस ग्रंथ से अनुवाद तथा टीका आदि के देने में मुझे जितना परिश्रम करना पड़ा है उससे कम परिश्रम मूल ग्रंथ को प्राप्त करने में नहीं पड़ा। परिश्रम के अतिरिक्त इस ग्रंथ के

संबंध में केवल सफ़र ख़र्च के लिये ही नहीं बल्कि डाक व्यय के लिये भी एक रक़म लगानी पड़ी है। ख़ैर! जो हुआ सो हुआ। यदि यह पुस्तक हमारे पाठकों के लिये उपयोगी हुई तो मेरा सारा परिश्रम तथा व्यय सार्थक हुआ।

हिंदू विश्वविद्यालय,
काशी,
१५ आश्विन, १९७८

निवेदक
महेशप्रसाद 'साधु'
मौलवी-आलिम, मौलवी-फ़ाज़िल

विषय-सूची

प्रस्तावना—मूल ग्रंथ तथा ग्रंथकार, मुसलमानों का प्रशंसनीय साहस, मुसलमान सौदागर, सबसे प्राचीन यात्रा-विवरण, इलियट महोदय का मत, डा० लीवान, सुलैमान का परिचय, समय, हस्तलिखित मूलग्रंथ का अनुवाद, अरबी की मूल प्रति का प्रकाशन, मूल अरबी ग्रंथ की प्राप्ति की राम-कहानी, मूल यात्रा-विवरण पर एक दृष्टि, हिंदी अनुवाद, हिंदी अनुवाद की विशेषता, केवल हिंदी संस्करण में नक़शा, हिंदी संस्करण की विशेषता, आवश्यक फुटकर बातें। पृ० १—२१।

यात्रा-विवरण, पहला खंड—भारतीय महासागर अरब तथा चीन संबंधी बातें—द्वीप और उनमें समुद्री वस्तुएँ, द्वीप विषयक अन्य बातें, लंका द्वीप, परम पितामह बाबा आदम का पग-चिह्न, रामनी नाम का एक बड़ा टापू, नियान नामी टापू, शत्रु-वध से विवाह संस्कार, नर-भक्षक मनुष्य-जाति, नंगे मनुष्य, नर-भक्षक और नंगे मनुष्य, चाँदी की खानोंवाला टापू, सागर के असंख्य टापू, बादल में लंबी पतली जीभ, पानी में वायु की प्रचंडता, चीन का ख़ानफ़ू नगर, चीन के ख़ानफ़ू नगर का मुसलमान क़ाज़ी, अरब सागर के स्थान तथा समुद्री मार्ग, अरब और चीन का समुद्री मार्ग, हरकंद सागर का एक टापू, कलाहबार, बतूमा, कदरंज और

सैफ़ संदरफुलात, संजी और चीन के फाटक, चीन और बंदरगाह खानफू का हाल, मुलजान का टापू, उड़ने और नारियल पर चढ़ जानेवाली मछलियाँ आदि, चीनियों के वस्त्र, चीनियों का खानपान, चीनियों में शराब का चलन नहीं, चीनियों का रहन-सहन। पृ० २३—४८

दूसरा खंड—भारत तथा चीनसंबंधी बातें और इन देशों के राजाओं का हाल—संसार के चार प्रधान राजा, भारतवर्ष का महाराजा बलहरा, महाराजा बलहरा और अन्य राजा, भारत के अन्य प्रतिष्ठित राज्य, भारतीय शिल्प कला तथा अन्य वस्तुएँ, रोहमी राज्य में गैंडा, भारत के कुछ छोटे छोटे राज्य, चीन को भारत का भय, चीन के प्रधान नगरों की विशेषताएँ, चीनियों के सिक्के, चीन में अन्य वस्तुएँ, चीन में बाहरी माल की बिक्री का दस्तूर, चीनियों के मृतक, चीनी मृतकों को गाड़ते हैं, चीनियों में लिखना पढ़ना और अधिकारी वर्ग, चीनी हाकिम का दरबार, चीन सम्राट् के विचार, चीन में कर, चीन सम्राट् की आय, चीन में दुखियों के लिये घंटी, चीन राज्य में सरकारी परवाने तथा संपत्ति, चीन में न्यायपद्धति, चीन की चिकित्सा संबंधी बातें, चीन में राज्यकोष से बूढ़ों की वृत्ति, चीनियों का लिखना पढ़ना तथा अन्य बातें, भारत में गरम दहकते लोहे से दोषी की परख, भारत में खौलते पानी से दोषी की परीक्षा, लंका में शाही जनाज़े की प्रथा, भारत के तपस्वी साधु, भारत में अधिकार,

भारतीय राजाओं में राज्य के लिये लड़ाई नहीं होती, चीन में अधिकारियों को दंड, विवाह का ढंग, भारत में स्त्री भगानेवाले को दंड, आचार गृह तथा गृहिणी संबंधी बातें, चीनियों के भोजन तथा पूजा-पाठ, दाढ़ी मूछों का वृत्तांत, न्याय, कुछ फुटकर बातें, चीन और भारत में शुद्धता-अशुद्धता, चीन और भारत का तुलनात्मक वर्णन, विद्या की चर्चा, हाथी घोड़े तथा सैनिक, जल-वायु तथा वर्षा, दोनों देशों का पहनावा, चीन से मिले जुले स्थान। पृ० ४६—८६

परिशिष्ट—१—मालद्वीप, २—अंबर, ३—नारियल, ४—कौड़ियाँ, ५—पूज्य पितामह बाबा आदम का पग-चिह्न, ६—सुगंधित लकड़ियाँ अर्थात् ऊद, ७—शंख, ८—कपूर, ९—पतंग की लकड़ी, १०—बेंत, ११—जहाज़, १२—चीन में बाँस, १३—कोलम, १४—चीन में रेशम, १५—सेना में घोड़ों की अधिकता, १६—प्राचीन काल में हाथी, १७—जुरुज़ अर्थात् गुर्जर देश (गुजरात), १८—गैंडा, १९—चीनी मिट्टी, २०—चीन के मृतक। पृ० ८७—१२९

प्रस्तावना ।

मूल ग्रंथ तथा ग्रंथकार ।

मुसलमानों का प्रशंसनीय साहस

लोकमान्य हज़रत मुहम्मद साहब का शुभ वचन है—

"दस भागों में से नौ भाग मनुष्य की वृत्ति व्यापार में है"।

इसके सिवा अरबी में एक सुभाषित विचार है—

अस्सफ़रो वसीलतुज़्ज़फ़र ।

(السفر وسيلة الظفر)

अर्थात्—यात्रा सफलता की कुंजी है ।

यात्रा के निमित्त आज जैसी सुगमताएँ हैं वे किसीसे छिपी नहीं हैं। आज से एक हज़ार वर्ष पहले यात्रा तथा भ्रमण करना कितना कठिन रहा होगा इसका अंदाज़ा बहुत कुछ केवल वेही लोग कर सकते हैं जिनको ऐसे स्थान में आने जाने का अवसर पड़ा है जहाँ रेल तथा मोटर आदि की गुज़र नहीं है। सुजान लोग अनभिज्ञ नहीं हैं कि आज से एक हज़ार वर्ष पहले युरोप की ईसाई जातियों पर घोर अंधकार छाया हुआ

था, वहाँ मुसलमान लोगों की ही तूती बोल रही थी। ऐसे समय में मुसलमान लोगों ने भरसक प्रयत्न करके दूर देशों में जितना भ्रमण किया इतिहास के पृष्ठ उससे कोरे नहीं हैं। अतः उस समय के वृत्तांतों को सामने रखते हुए कोई भी शुद्ध हृदय से उनकी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता।

जानना चाहिए कि मुसलमान लोग पहले पहल व्यापारार्थ ही दूर देशों में पहुँचे। ये लोग केवल थल-मार्ग ही से नहीं गए बल्कि जल-मार्ग के ग्रहण करने में भी इन्होंने बड़ी निर्भयता दिखलाई है। ये लोग अफ़्रीका और युरोप के कुछ हिस्सों में पहुँचे। चीन की पूर्वीय सीमा तक पहुँचे। ऐसा करने में उन्होंने केवल थल-मार्ग ही पर संतोष नहीं किया बल्कि वे अपनी नौकाएँ तथा जहाज़ लेकर हिंद महासागर से भी गुज़रते थे और बड़े धैर्य के साथ समुद्री मार्ग से भी चीन की पूर्वी सीमा तक अपना माल असबाब लेकर पहुँचते थे। वे दूर से दूर स्थान में भी जाने से हिचकते न थे, इक्के दुक्के नहीं बल्कि समूह का समूह बनाकर चलते थे। अब भी समूह का समूह बनाकर चलने की शैली मुसलमानों में है। जहाँ रेल अथवा दूसरे प्रकार की सवारी के सामान नहीं हैं वहाँ के लोग अब भी ऐसा ही करते हैं। वर्ष के एक नियत समय पर मक्का नगर की यात्रा करने की प्रथा मुसलमानों में है। उस अवसर पर प्रायः ऐसा ही किया जाता है।

मुसलमान सौदागर

जो मुसलमान सौदागर विदेश में जाते थे उन्होंने ही लोगों को दूसरे देशों का हाल बतलाया। वास्तव में उन्होंने ही आदि में यात्रियों का कर्त्तव्य पालन किया; इनसे ही बहुत कुछ समाचार पाकर इब्न हौकल बग़दादी, मसऊदी, अलबिरूनी और इब्नबतूता आदि अनेक लोगों ने यात्रा पर कमर बाँधी, यहाँ तक कि अपनी आयु का एक बड़ा भाग भ्रमण में ही निरंतर काटा, केवल भ्रमणार्थ ही सहस्रों कष्ट उठाए, भूगोल तथा इतिहास आदि में विशेष रूप से वृद्धि की, अनेक लोगों को लाभ पहुँचाया, अपनी जाति की सेवा की और अपना नाम सदैव के लिये इतिहास में अमर कर गए। इसके सिवा क्या यह बात इतिहास जाननेवालों को मालूम नहीं कि भारतवर्ष से अनेक चीज़ें काबुल और कंधार के मार्ग से सारे पश्चिम में फैलती थीं। निस्संदेह उन्हीं चीज़ों को देखकर महमूद ग़ज़नवी को भारत के धन का लालच समाया, यहाँ तक कि उसने सत्रह हमले भारतवर्ष पर किए। निस्संदेह उसने भारत के विषय में बहुत कुछ सौदागरों ही से मालूम किया था। अस्तु, इस प्रकार की बातों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय के मुसलमान सौदागर व्यापार ही में कुशल न थे बल्कि साथ ही साथ चतुर यात्री का कर्त्तव्य भी पालन किया करते थे। मुसलमान लोग जब तक अनेक देशों में भ्रमण करते रहे, जब तक व्यापार

इनके हाथ में रहा, लक्ष्मी इनकी दासी रही। जब से व्यापार इनके हाथ से गया और युरोप निवासियों ने उसे अपने काबू में किया तब ही से मुसलमानों की अवस्था शोचनीय हो गई है।

सबसे प्राचीन यात्राविवरण

भारतवर्ष के संबंध में जिस प्रकार अनेक यूनानी, चीनी फ्रांसीसी आदि लोगों के यात्राविवरण पाए जाते हैं उसी प्रकार अनेक मुसलमानों के भी यात्राविवरण हैं। मसऊदी, अलबिरूनी और इब्नबतूता आदि यात्रियों का नाम तथा काम इस विषय में विशेष रूप से गौरव रखता है। परंतु इस प्रकार के सारे यात्राविवरणों में जो सबसे प्राचीन समझा जाता है वह सुलैमान (سلیمان) नाम के एक सौदागर का लिखा है, जिसने व्यापारार्थ केवल भारत ही में भ्रमण नहीं किया, बल्कि चीन का भी चक्कर काटा था।

इलियट महोदय का मत

इलियट ने भारतवर्ष का एक महत्वपूर्ण इतिहास मुसलमानों द्वारा संकलित सामग्री के आधार पर अँग्रेज़ी में लिखा है। उसमें भी उन्होंने सुलैमान सौदागर के यात्राविवरण को ही सबसे प्राचीन लेख माना है[1]।

---

(१) हिस्ट्री आफ इंडिया एज़ टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स (मुहम्मडन पीरियड), आठ भाग, इलियट लिखित और डासन संपादित। प्रथम भाग के प्रारंभ में सुलैमान का उल्लेख है।

डा० लीबान

फ़्रांसीसी डाकृर लीबान इस सौदागर को ही भारत का पहला मुसलमान यात्री बतलाते हैं[१]। डाकृर महोदय का यह भी कथन है कि सुलैमान का यात्राविवरण पहली पुस्तक है जो कि युरोप में चीन के संबंध में प्रकाशित हुई। निदान भारत तथा चीन के लिये सुलैमान सौदागर को ही प्रथम मुसलमान यात्री समझना उचित प्रतीत होता है।

सुलैमान का परिचय

सुलैमान फ़ारस का सौदागर था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका सारा कारबार बसरा नगर में था अथवा वह बसरा में ही बस गया था। उस ज़माने में व्यापार ज्यादा-तर मुसलमानों के हाथ में था। इन्हींकी बदौलत भारत तथा चीन से अनेक चीज़ें सारे युरोप और अफ्रीका में पहुँचती थीं। इस बहाने से सौदागर भी बहुत सफ़र किया करते थे। निदान सौदागरी के ही सिलसिले में सुलैमान ने भी भारत तथा चीन की कई बार यात्रा की। सौदागर की ही लेखनी से यह भी स्पष्ट रूप से जाना जाता है कि उसका संबंध भारत के साथ बहुत समय तक रहा। वह लिखता है कि एक बार

---

(१) देखो उर्दू में 'तमद्दुन अरब' (تمدن عرب) । इस ग्रंथ को पहले डाक्टर लीबान ने फ्रांसीसी भाषा में लिखा था, पीछे से सैयद अली बिलग्रामी ने इसका उर्दू में अनुवाद किया।

(भारत में) मैंने एक मनुष्य (साधु) को देखा जो केवल एक ही मृगचर्म धारण किए हुए था और सूर्य्य की ओर देख रहा था। सोलह वर्ष बाद जब मैं फिर उस स्थान पर आया तो देखता हूँ कि वह मनुष्य उसी तरह खड़ा था। अतएव सिद्ध होता है कि उसने सारी बातें अपनी जानकारी के सहारे लिखी हैं।

समय

सुलैमान के यात्राविवरण के लेख-बद्ध किए जाने का समय सब इतिहास लेखक सन् ८५१ ई० लिखते हैं। इससे सिद्ध है कि सुलैमान की यात्राएँ ईसवी नवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अवश्य सन् ८५१ ई० से पहले हो हुई हैं।

हस्तलिखित मूलग्रंथ के अनुवाद

अरबी भाषा में सिलसिलातुत्तवारीख़ (سلسلة التواريخ) नामी एक ग्रंथ है। यह दो भागों में विभक्त है। पहले भाग की सामग्री सौदागर सुलैमान की सन् ८५१ ई० की संपादित है। दूसरे भाग की अबूज़ैद हसन सीराफ़ी (ابوزيد حسن سيرافي) की लगभग सन् ९१६ ई० की लिखी हुई है। दोनों भारत और चीन के विषय में हैं। सारी की सारी सामग्री फ्रांस के मंत्री कोलबर्ट महोदय के पुस्तकालय में पाई गई थी। सन् १७१८ ई० में अबे-रीनो (Renaudot) ने इसका अनुवाद

फ़्रांसीसी भाषा में पहले पहल प्रकाशित किया। सुलैमान ने चीन तथा भारत की यात्रा की थी। अबूज़ैद हसन सीराफ़ी न तो भारत ही में आया था और न चीन ही में गया। वह फ़ारस के बंदर सीराफ़ का निवासी था। संभवत: बसरा ही में रहा करता था। उसने चीन और भारत के विषय में जो कुछ लिखा है वह सुलैमान तथा मसऊदी ऐसे लोगों के सहारे लिखा है। परंतु फ़्रांसीसी अनुवादक ने यह समझा था कि अबूज़ैद हसन सीराफ़ी ने भी वास्तव में चीन और भारत की यात्रा की थी क्योंकि अबे-रीनो ने अनुवादित सामग्री के शीर्षक को निम्न लिखित शब्दों में प्रकट किया है—

Anciennes Relations des Inde et de la Chine de deux etc.[1]

'सिलसिलातुत्तवारीख़' का अंग्रेज़ी अनुवाद मिस्टर यूसेबिअस रीनो (Eusebius Renaudot) ने मूल अरबी से सन् १७३३ ई० में निम्नलिखित नाम से लंडन में छपवाया—

Ancient Accounts of India and China by two Mohammadan Travellers. (London, 1733 A. D.)

इस अनुवादित ग्रंथ में सिलसिलातुत्तवारीख के अनुवाद के सिवा भारत तथा चीन संबंधी कुछ अन्य बातें भी दी गई हैं। परंतु अबूज़ैद की बाबत जो कुछ फ़्रांसीसी अनुवादक महोदय ने समझा, वही अंग्रेज़ी के भी अनुवादक ने समझा;

१—देखो इलियट लिखित इतिहास, पहला भाग।

अर्थात् अबूज़ैद को भी भारत तथा चीन में यात्रा करनेवाला माना।

अरबी की मूल प्रति का प्रकाशन

फ़्रांसीसी अनुवाद के प्रकाशित होने से एक काफ़ी समय बाद मूल प्रति के प्रकाशित होने की नौबत आई। सन् १८११ ई० में मोशों लैंगले (Monsieur Langles) ने मूल अरबी सामग्री को अरबी अक्षरों में छपवाया और अनुवाद के प्रकाशित करने का वादा किया। सन् १८२४ ई० में लैंगले का देहांत हो गया और अनुवाद प्रकाशित न हुआ। सन् १८४५ ई० में मोशों रीनो (Reinaud) ने केवल फ़्रांसीसी अनुवाद ही नहीं निकाला, बल्कि ग्रंथ में कई उपयोगी बातें भी दीं। उस ग्रंथ का नाम यह है—

Relation
Des Voyages
Faits
Par les Arabes et les Persans
Dans L' Inde et A' La Chine

यह ग्रंथ फ़्रांस की राजधानी पैरिस में छपा है। सारा ग्रंथ दो प्रतियों में है। पहली प्रति में लैंगले महोदय का छपवाया हुआ अरबी मूल है और साथ ही साथ पर्याप्त टीका है, उसमें कई अच्छी बातें बतलाई गई हैं। दूसरी प्रति में अरबी सामग्री का विशुद्ध फ़्रांसीसी अनुवाद पर्याप्त प्रस्तावना

सहित है। परंतु इस ग्रंथ में जो बात अति उत्तम हुई है वह यह है कि अबूज़ैद हसन सीराफ़ी को यात्री नहीं बतलाया गया अर्थात् पहले जो यह समझा गया था कि अबूज़ैद ने जो कुछ लिखा है वह अपने अनुभव के आधार पर लिखा है, उसका संशोधन इस बार कर दिया गया अर्थात् अबूज़ैद हसन सीराफ़ी को भारत अथवा चीन में जानेवाला यात्री नहीं माना गया।

मूल अरबी ग्रंथ की प्राप्ति की रामकहानी

अब जब कि यह बात स्पष्ट हो गई है कि केवल सुलैमान सौदागर ने ही यात्रा की थी, उसीका यात्राविवरण सबसे अधिक प्राचीन और उसे ही सबसे पहला मुसलमान यात्री समझा जाता है। अतः इस अवसर पर मैंने केवल सुलैमान के ही यात्राविवरण का अनुवाद पर्याप्त समझा है। परंतु यात्राविवरण का पता पहले पहल मुझे कब लगा, कैसे लगा, फिर कितने दिनों के बाद मूल ग्रंथ हिंदी में अनुवाद के लिये मिल सका तथा कितनी कठिनाइयों से मिला—इस प्रकार की बातों को भी संक्षिप्त रूप से जतला देना उचित है।

जानना चाहिए कि अरबी में 'मजानिल अदब' (مجانی الادب) नाम की एक पुस्तक गद्य-पद्य में है। वह छः भागों में है और बेरूत में छपी है। उस ग्रंथ का मान अरबी साहित्य संसार में

बहुत ज़्यादा है। उसीके पहले भाग में सिलसिलातुत्तवारीख़ का कुछ अंश है। आठ वर्ष से भी अधिक हुए जब कि मैंने पहले पहल सिलसिलातुत्तवारीख़ का नाम जाना था। अस्तु, इतिहास की ओर कुछ थोड़ी सी रुचि होने के कारण उसी समय मेरी प्रबल इच्छा हुई कि जो कुछ उस इतिहास में भारत के संबंध में लिखा है उसको जान लूँ। परंतु उसके पश्चात् पठन पाठन आदि का पूरा भार सिर पर पड़ जाने के कारण कई वर्षों तक साधारण उद्योग के सिवा इस ग्रंथ के निमित्त विशेष उद्योग न कर सका।

पहले मेरी इच्छा केवल ग्रंथ के पढ़ने ही की थी। मेरा विचार कदापि नहीं था कि मैं इस ग्रंथ का हिंदी अनुवाद करूँ। जब इलियट द्वारा लिखित इतिहास से मुझे सिलसिलातुत्त-वारीख़ का यथोचित परिचय मिल गया तब पिछले वर्षों में पढ़ाई का साधारण भार होने पर भी मैंने मूल अरबी ग्रंथ की प्राप्ति के निमित्त विशेष रूप से कष्ट उठाया। दर्जनों विद्वानों से इसकी बाबत पूछा पुछवाया। कुछ अवसर निकालकर कई अच्छे अच्छे पुस्तकालयों को स्वयं जाकर देखा तथा बहुतों के साथ बहुत कुछ पत्र-व्यवहार किया यहाँ तक कि उत्तर के निमित्त टिकट भेजे, परंतु कहीं से उत्तर मिला कि कुछ पता नहीं चलता, किसी ने उत्तर दिया कि हमारे यहाँ नहीं है, किसी ने किसी प्रकार का उत्तर देने का भी कष्ट न उठाया। मैं इसी उधेड़ बुन में लगा हुआ था कि एशियाटिक सुसाइटी

बंबई के मंत्रीजी का लिखा हुआ कृपापत्र मिला कि इंपीरियल लाइब्रेरी, कलकत्ता, से पूछना अधिक उचित है। उनकी इस संमति के अनुसार वहाँ से पूछा। ईश्वर की कृपा से शीघ्र उत्तर मिला कि पुस्तक है। ऐसा उत्तर पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई और चित्त ठिकाने हुआ।

अब मैं इस फेर में पड़ा कि किसी प्रकार पुस्तक देखने के लिये मिले। इसी सोच विचार में था कि इंपीरियल लाइब्रेरी के पुस्तकाध्यक्ष ने स्वयं बिना मेरे पूछे ऐसे साधन के बतलाने की कृपा की जिसके द्वारा मैं पुस्तक को सुगमता से प्राप्त कर सका। फिर पुस्तक के देखने से ज्ञात हुआ कि पुस्तक को कहीं कहीं कीड़ों ने खा रक्खा है, यहाँ तक कि मूल अरबी पाठ के भी कुछ शब्दों तथा अक्षरों को हानि पहुँच चुकी है। अब इस त्रुटि की पूर्ति भी कोई साधारण बात न थी, परंतु कई बार पाठ करने और सोचने विचारने से यह त्रुटि तथा कठिनाई भी दूर हो गई, और पाठ निस्संदेह यथोचित रूप से ठीक हो गया। इसके बाद मैंने अरबी पाठ की नकल की और फिर हिंदी अनुवाद की नौबत आई। इस रामकहानी से पाठकों को जहाँ यह पता लग रहा है कि मुझे मूल पुस्तक के निमित्त कितनी कठिनाई हुई है उसीके साथ ही पाठक इस बात के समझने से भी वंचित नहीं रह सकते हैं कि भारत के पुस्तकालयों में इस पुस्तक का कितना अभाव है।

मूल यात्राविवरण पर एक दृष्टि

मैं इस बात का भी उल्लेख करना उचित समझता हूँ कि सुलैमान के यात्राविवरण को कई बार पढ़ने तथा सावधानी के साथ अनुवाद करने के कारण मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि अरबी साहित्य तथा अलंकार की दृष्टि से इस विवरण की इबारत का बहुत बड़ा भाग बहुत अच्छा है। ऐतिहासिक ग्रंथ होने पर भी इसकी इबारत ऐसी परिपूर्ण है जैसी कि किसी ठेठ साहित्य ग्रंथ की होती है। यही कारण है कि इसका कुछ अंश साहित्य की एक उत्तम पुस्तक में भी चुनकर रक्खा गया है। परंतु यह भी जान लेना चाहिए कि पुस्तक की इबारत कहीं कहीं ऐसी भी है जैसी कि दर्शन शास्त्रों की होती है, अथवा कहीं कहीं कुछ टेढ़ी भी है। और कहीं कहीं ऐसी भी है जिसको वस्तुतः वही समझ सकता है जो व्याकरण के उलझन में डालनेवाले नियमों से भली भांति परिचित हो।

सौदागर होते हुए भी सुलैमान ने वास्तव में यात्री का भी बहुत कुछ धर्म पाला है परंतु वह सर्वथा यात्री ही नहीं था इस कारण विवरण में की बातें असंबद्ध भी हैं। यद्यपि कहीं किसी बात का वर्णन है और कहीं किसी बात का, तथापि सुलैमान का यात्राविवरण अति आदरणीय तथा महत्वपूर्ण है और उसकी उपयोगिता से कदापि तनिक भी इनकार नहीं किया जा सकता। फलतः सुलैमान ने क्या लिखा

है, कैसा लिखा है इन सब बातों का पता पाठकों को मूल सामग्री से ही लगेगा।

ईसवी नवीं शताब्दी में भारत तथा चीन के साथ मुसलमानों का संबंध कैसा था, लोग किस प्रकार जहाज़ लेकर एक देश से दूसरे देश में आते जाते थे—ये सब बातें ग्रंथ से बहुत कुछ मालूम हो जायँगी। चीन राज्य के नगर ख़ानफ़ू के एक न्यायाधीश का वर्णन सुलैमान ने किया है। ख़ानफ़ू को समुद्र के तट पर एक बंदर बतलाया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल में मुसलमान लोग पहले समुद्र-मार्ग द्वारा चीन में पहुँचे थे। इन सब बातों के सिवा भारत तथा चीन से संबंध रखनेवाली कई अन्य महत्वपूर्ण बातें भी मालूम हो जायँगी।

हिंदी अनुवाद

एक बड़े अनुवादक का मत है कि अनुवाद के दो मुख्य उद्देश होते हैं। अनुवाद या तो इस उद्देश से किया जाता है कि उसके सहारे मूल ग्रंथ के अवलोकन में आसानी हो अथवा इस उद्देश से होता है कि जो बात मूल लेखक ने अपनी भाषा में लिखी है उसीको दूसरी भाषा में भी लिखा जाय। अतः यह हिंदी अनुवाद पहले उद्देश की नहीं बल्कि दूसरे उद्देश की पूर्ति के निमित्त है।

सच तो यह है कि यात्राविवरण के साधारणतया केवल

अनुवाद कर देने में अधिक कष्ट नहीं हुआ किंतु जिन बातों की बदौलत असाधारण कष्ट का मुँह देखना पड़ा अथवा अधिक कष्ट न होने की कसर निकल गई वे निम्न लिखित हैं—

(क) असंबद्ध बातों को यथोचित रूप से सुलझाकर रखना।

(ख) एक हज़ार वर्ष से भी अधिक बीते हुए समय की पुरानी वस्तुओं तथा बातों के संबंध में जो शब्द अरबी में आए हैं उनमें से कुछ ऐसे हैं जो कि अब बहुत कम प्रचलित हैं। उनका नाता अब केवल कोषों से ही रह गया है। ऐसे शब्दों का ठीक ठीक अर्थ खोजकर लिखना।

(ग) ऐसे शब्द का ठीक ठीक अर्थ खोजकर लिखना जो कि अपने समान जातिवाली वस्तु के निमित्त प्रयोग में लाया गया हो और वह शब्द अब दोनों तथा अन्य कई वस्तुओं का भी सूचक हो। जैसे चीन में बाँस बहुत होता है और अरब में नहीं होता। अरबी में इसके लिये वास्तव में कोई शब्द नहीं था। 'क़ना' (قنا) शब्द बेंत, सरकंडा तथा भाला आदि का सूचक है। अतः 'सरकंडा' तथा 'बेंत' के समान होने के कारण 'बाँस' को भी 'क़ना' ही लिख दिया। अब जब कि इस बात का पता हो कि चीन में बाँस होता है और पहले भी वहाँ बहुत होता था तथा चीन में बाँस

बहुत उपयोगी वस्तु है तब ही चीन के विषय में 'क़ना' का ठीक अर्थ बाँस लिया जा सकता है नहीं तो 'बेंत' तथा 'सरकंडा' भी लिया जा सकता है जो कि त्रुटिपूर्ण है।

अरबी भाषा तथा साहित्य के विषय में एक बड़ी गंभीर बात यह भी है कि कोई शब्द जब कि अ, इ और उ अर्थात् ज़बर, ज़ेर और पेश नाम की मात्राओं से शून्य होता है तो उसका उच्चारण कई प्रकार से हो सकता है और प्रत्येक अवस्था में उसके अर्थ भी बहुत तथा भिन्न भिन्न हो जाते हैं। साहित्य ग्रंथों में आवश्यकतानुसार सारी अथवा कहीं कहीं मात्राएँ होती हैं नहीं तो बाकी सारे ग्रंथ मात्रारहित हुआ करते हैं। परंतु ये कठिनाइयाँ तथा बातें ऐसी नहीं हैं जिनको अरबी के योग्य विद्वान् सोच समझकर सुलझा न सकते हों।

अरबी की रचना हिंदी से बिल्कुल भिन्न होती है, यहाँ तक कि अरबी के किसी किसी शब्द का अनुवाद वास्तव में हिंदी तथा अन्य कई भाषाओं में एक पूरी पंक्ति में ही हो सकता है। निस्संदेह हिंदी में अभी तक कोई ऐसी पुस्तक नहीं छपी है जिसका सीधे अरबी से अनुवाद किया गया हो। इस कारण इस विषय में केवल अपनी ही सोच समझ से बहुत कुछ करना पड़ा है। इसमें संदेह नहीं कि यद्यपि इस प्रकार की बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित हुई परंतु मेरे लिये वे वस्तुतः बिलकुल असाध्य न थीं।

हिंदी अनुवाद की विशेषता

फ़्रांसीसी और अंग्रेज़ी की दो आवृत्तियों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। उनमें से फ़्रांसीसी आवृत्ति अधिक पुरानी न होने के कारण मेरे कार्य्य के लिये अधिक उपयोगी हो सकती थी, परंतु फ़्रांसीसी भाषा न जानने के कारण मैं उससे यथोचित लाभ बिल्कुल ही न उठा सका। अंग्रेज़ी आवृत्ति अवश्य उपयोग में लाई जा सकती थी परंतु केवल अनुवाद के निमित्त मुझे उसकी कोई आवश्यकता ही न थी। बाद को जब अनुरोध किया गया कि मैं अंग्रेज़ी अनुवाद से अवश्य मिला लूँ तब मैंने आरंभ का थोड़ा सा भाग अवश्य अच्छी तरह से मिलाया किंतु सारे का सारा मिलाना व्यर्थ सा प्रतीत हुआ, क्योंकि जो अरबी इबारत आज से आठ वर्ष पहले मैं भली भाँति समझ लेता था वह मेरे लिये भला आज क्योंकर अधिक कठिन हो सकती थी। इसपर भी अंग्रेज़ी अनुवाद में कहीं कहीं की टेढ़ी तथा उलझन में डालनेवाली इबारतों को देखा तो पता लगा कि उसका अनुवाद अंग्रेज़ी में या तो किया ही नहीं गया है अथवा है तो ठीक ही नहीं है। फिर अंग्रेज़ी अनुवाद के कुछ अंश को और देखा तो कुछ त्रुटियाँ और निकलीं। परंतु यह ध्यान रहे कि अंग्रेज़ी आवृत्ति सन् १७३३ ई० अर्थात् लगभग दो सौ वर्ष पहले की छपी हुई है। उस समय को ध्यान में रखकर भली भाँति स्पष्ट शब्दों में अंग्रेज़ी अनुवादक की सराहना करनी पड़ती है और स्वीकार करना

पड़ता है कि उस समय जो कुछ लिखा गया था वह सर्वथा पर्याप्त ही था।

केवल हिंदी संस्करण में नक़शा

सुलैमान के यात्राविवरण की फ़ांसीसी अथवा अंग्रेज़ी आवृत्तियों में से किसी भी आवृति में कोई नक़शा नहीं दिया गया है परंतु इसमें नक़शा दिया जा रहा है। सच तो यह है कि यह नक़शा अरबी और फ़ांसीसी की किताब 'अजायबउल हिंद' अर्थात् 'Livre Des Merveilles De L' Inde' नाम की पुस्तक के आधार पर तैयार किया गया है। उक्त पुस्तक में मूल अरबी है और नीचे मूल अरबी का फ़ांसीसी अनुवाद तथा आवश्यक टीका टिप्पणियाँ हैं। पुस्तक का अरबी भाग भारत तथा पूर्वीय खंडों के संबंध में है। यह पुस्तक सुलैमान के विवरण के थोड़े ही काल बाद लिखी गई थी। इसमें बहुत से ऐसे नाम हैं जो सुलैमान के विवरण में भी हैं, इसीके नवीन संस्करण के नक़शे ने निस्संदेह मेरे संदेहों को निश्चय रूप से दूर कर दिया है। इससे अनेक पुराने स्थानों का ठीक ठीक पता लग जायगा और भली भाँति मालूम हो जायगा कि वर्तमान समय का अमुक नाम पहले अमुक स्थान का था। विवरण में जो नाम आए हैं उनके सिवा भी कुछ और आवश्यक स्थानों के नाम नक़शे में दे दिए हैं जिससे स्पष्ट रूप से पता लग सके कि अमुक पुराना स्थान अमुक स्थान के

पास तथा अमुक ओर था। इस प्रकार स्थानों के विषय में जो संशय उत्पन्न हो सकता है उसका पूर्ण रूप से निवारण हो जायगा। पुस्तक पढ़ने से पहले ही यदि नक़शे को देख लिया जाय अथवा बीच बीच में पढ़ते समय आवश्यकतानुसार एक दृष्टि नक़शे पर डाल दी जाया करे तो भी पुस्तक के अवलोकन में बहुत कुछ सुगमता हो सकती है।

हिंदी संस्करण की विशेषता

मुझे अपने कार्य्य में मार्को पोलो तथा इब्नबतूता के यात्राविवरणों से बड़ी सहायता मिली है। इनमें से मार्को पोलो ने तेरहवीं शताब्दी के अंत में अर्थात् सुलैमान से लगभग पाँच सौ वर्ष बाद भारत तथा चीन में भ्रमण किया है, और चौदहवीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध यात्री इब्नबतूता ने सुलैमान के लगभग पाँच सौ वर्ष बाद भारत तथा चीन में भ्रमण किया है। इनके सिवा अन्य जितनी पुस्तकों आदि से भी सहायता मिली है और जिनके सहारे बहुत सी अपूर्व उपयोगी बातें ग्रंथ में संमिलित कर दी गई हैं यदि उनकी सूचीमात्र ही दी जाय तो केवल उसीके निमित्त कई पृष्ठ लग जायँगे। इस प्रकार नक़शे के सिवा जो बहुत सी उपयोगी बातें ग्रंथ में संमिलित की गई हैं उनमें से बहुतेरी बातें मूल सामग्री के नीचे ही दे दी गई हैं और बहुत सी परिशिष्ट भाग में दी गई हैं। सुलैमान ने चीन और भारत के संबंध में बहुत सी तुलनात्मक बातें भी दी हैं, इस कारण

आवश्यकतानुसार तुलनात्मक बातें भी बढ़ा दी गई हैं। परंतु इस अवसर पर इस बात के जतला देने में मुझे किसी प्रकार का संकोच नहीं है कि यद्यपि मैंने यथाशक्ति उद्योग करके बहुत सी उपयोगी बातें ढूँढ़ ढाँढ़ कर एकत्र कीं और बहुत सी संशययुक्त समस्याओं आदि को स्पष्ट रूप से यथोचित सुलझाया तथापि कुछ नाम आदि ऐसे रह गए हैं जिनके बारे में कुछ पता ही ठीक ठीक नहीं लग सकता है कि अब वे बदलकर क्या हो गए हैं।

"मनुष्य भूल चूक का पुतला है"—ऐसा भावार्थ एक सुप्रसिद्ध अरबी कहावत का है, सो इस कार्य में यथाशक्ति कोई कसर उठा न रखने पर भी संभव है कि मुझसे केवल एक ही नहीं बल्कि कई भूल चूक हो गई हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इसके सिवा मैं स्वयं पूर्ण रूप से अनुभव करता हूँ और खुले शब्दों में स्वीकार करता हूँ कि घोर परिश्रम करने पर भी कुछ बातों के सुलझाने में मुझे सर्वथा असमर्थ ही होना पड़ा है, परंतु विचारशील पुरुष भली भाँति जान सकते हैं कि जो बातें अनुसंधान करके लिखी गई हैं बहुत सी बातों के मुक़ाबिले में छूट जानेवाली बातों की मात्रा अति न्यून है। फलत: सारी बातों को दृष्टि में रखकर मैं बलपूर्वक कह सकता हूँ कि यह हिंदी संस्करण केवल अनुवाद ही में नहीं बल्कि अन्य बहुत सी बातों में भी अंग्रेज़ी संस्करण के मुक़ाबिले में निर्विवाद रूप से कहीं अच्छा है और फ़्रांसीसी

अनुवाद तथा संस्करण (जो सन् १८४५ ई० का छपा हुआ है) के मुकाबिले में भी नक़शे द्वारा स्थानों के ठीक ठीक परिचय देने में तो अवश्य उत्तम है और संभव है कि कुछ उपयोगी बातों के बताने में भी अधिक अच्छा ही हो, क्योंकि उस समय की तथा आज की खोज तथा विद्या-चर्चा में बड़ा अंतर पड़ गया है।

आवश्यक फुटकर बातें

सुलैमान के बाद के जो यात्राविवरण पाए जाते हैं, उनमें भी कुछ नाम ऐसे ही हैं जिनके विषय में ठीक ठीक कुछ कहा नहीं जा सकता। अनेक लेखकों ने उनकी बाबत यद्यपि बहुत कुछ लिखा है तथापि जितना ही अधिक लिखा है उतना ही मतभेद अधिक हो गया है। परंतु सुलैमान ने अनेक राज्यों तथा टापुओं के जो नाम दिए हैं उनमें से जिनकी बाबत निश्चय रूप से पता लग सका है उन्हींकी बाबत आवश्यकतानुसार थोड़ा बहुत लिख दिया गया है। अब इस ग्रंथ के बारे में यह जान लेना भी अत्यंत आवश्यक है कि मूल अरबी ग्रंथ में कुछ बातें नहीं भी हैं क्योंकि हस्तलिखित मूल से थोड़ा सा भाग नष्ट हो चुका है। इस कारण जहाँ का अंश उपलब्ध नहीं है वहाँ फूलदार चिह्न लगा दिए हैं।

अब इस स्थान पर अपना वक्तव्य समाप्त करने से पहले

मैं यदि गवर्नमेंट आफ़ इंडिया की इंपीरियल लाइब्रेरी के सामयिक पुस्तकाध्यक्ष महोदय को धन्यवाद न दूँ तो एक प्रकार की कृतघ्नता होगी, क्योंकि आपने मूल अरबी ग्रंथ के विषय में मेरे साथ बड़ी उदारता दिखलाई है। साथ ही साथ इस्लामिया कालिज, लाहौर, के विद्यार्थी मुंशी फ़ीरोज़ हसन, तथा मास्टर श्रीयुक्त कालीचरण सिंह जी को भी धन्यवाद देना परम आवश्यक समझता हूँ, क्योंकि आप लोगों ने ग्रंथ की खोज तथा प्राप्ति में मेरा बहुत कुछ हाथ बँटाया है। इनके सिवा अब मैं अंत में उन सारे महानुभावों को भी हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिनकी कृपा से इस ग्रंथ में कुछ उपयोगी बातों की वृद्धि हो सकी है।

अनुवादक।

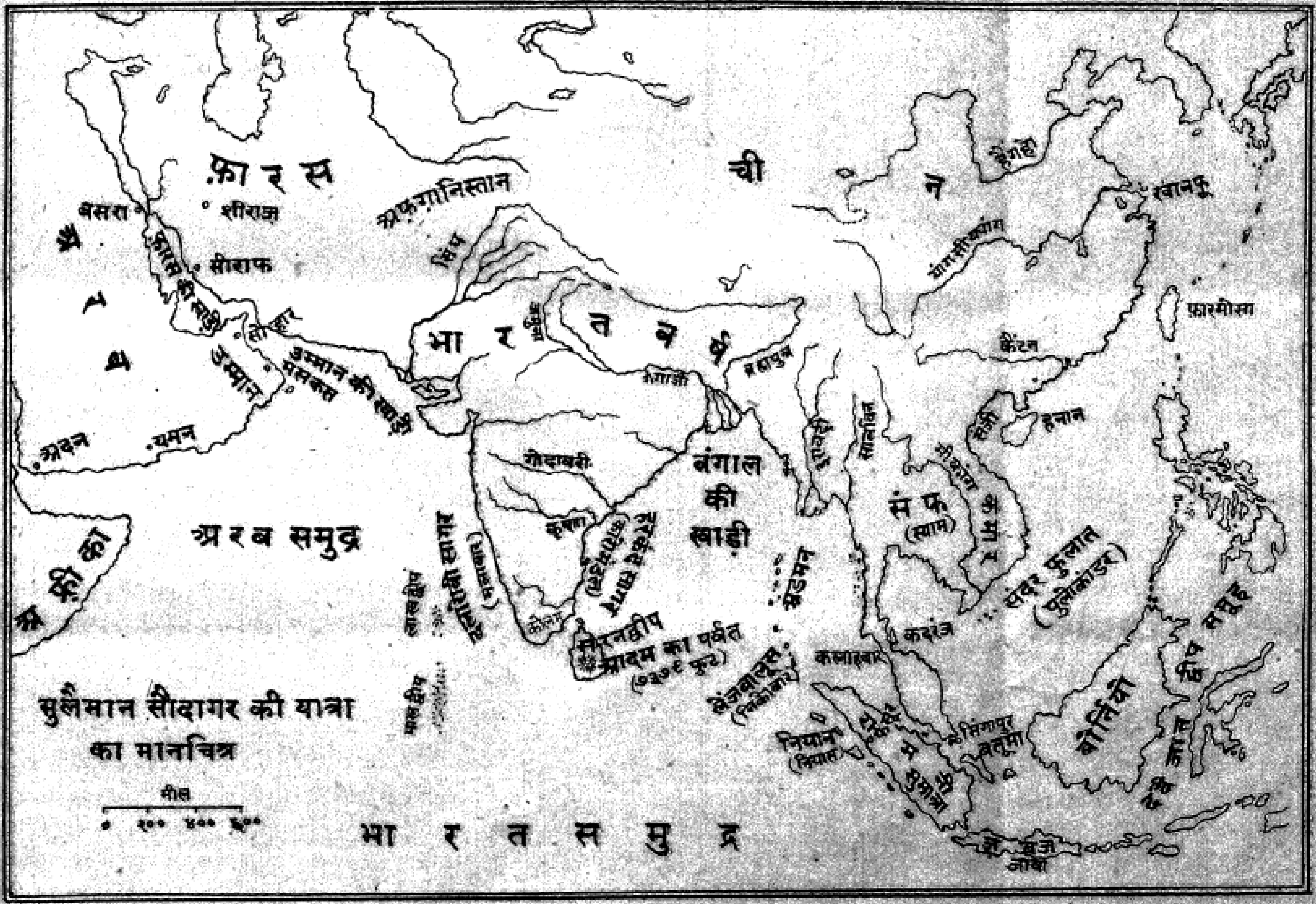
फ़ारस
चीन
अफ़ग़ानिस्तान
बसरा
शीराज़
सीराफ
अरब
अदन
यमन
उम्मान
मसकत
उम्मान की खाड़ी
भारतवर्ष
सिंध
गोदावरी
कृष्णा
बंगाल की खाड़ी
अरब समुद्र
अफ्रीका
अंडमन
संफ (स्याम)
फ़ारमोसा
कैंटन
हैनान
कलाहबार
सिंगापुर
सुमात्रा
बोर्नियो
जावा
भारत समुद्र
मील
० २०० ४०० ६००
सुलैमान सौदागर की यात्रा
का मानचित्र

सुलैमान सौदागर का यात्राविवरण।

पहला खंड।

× × × × × ×

भारतीय महासागर, अरब तथा चीन संबंधी बातें

—०—

द्वीप और उनमें समुद्री वस्तुएँ

× × × × × ×

हरकंद[1] नाम का सागर तीसरा सागर है। इसके और दलारोवी[2] नामक सागर के बीच में बहुत से द्वीप[3] हैं

---

(१) हरकंद—समुद्र का वह भाग जो कि आज कल 'बंगाल की खाड़ी' कहलाता है। उसका अधिकांश भाग तथा उसके साथ ही पूर्वीय घाट के पूर्व का समुद्री भाग और नीचे की ओर लंका तक का सारा जल हरकंद के नाम से विख्यात था।

(२) दलारोवी—वर्तमान समय में जो 'खंभात की खाड़ी' है उससे लेकर लंका के नीचे तक 'दलारोवी सागर' की सीमा थी। पश्चिमी घाट के पश्चिम का समुद्री भाग दलारोवी के ही अंतर्गत था।

(३) द्वीपों का नाम बिल्कुल ही नहीं दिया गया, परंतु हरकंद और दलारोवी सागरों की सीमा का जो पता चलता है, उससे स्पष्ट नतीजा निकलता है कि निस्संदेह द्वीपों से मालद्वीप व लकद्वीप नामी टापुओं से ही अभिप्राय है। साथ ही इसके एक और बात जान लेने योग्य यह भी है कि इन्हीं टापुओं के वर्णन के पश्चात् ही लेखक ने लंका का वर्णन किया है। मालद्वीप के विषय में देखो परिशिष्ट १—'मालद्वीप'।

यहां तक कि इनकी संख्या १९०० बतलाई जाती है और वास्तव में इन्हीं द्वीपों के कारण दलारोवी और हरकंद सागरों के बीच में अंतर हो गया है[1]। ये द्वीप एक स्त्री के अधिकार में हैं। अंबर इन द्वीपों में बहुत ही बड़ा बड़ा पाया जाता है। अंबर के छोटे छोटे टुकड़े पौधों के समान अथवा पौधों से मिलते जुलते हुए पाए जाते हैं। जिस प्रकार इस पृथ्वी पर पौधे उगते हैं ठीक उसी तरह अंबर समुद्र की तह में पैदा होता है। जब समुद्र में बड़ी तेज़ी के साथ उबाल आता है तो वह तेज़ उबाल खुंबी तथा कुकुरमुत्ता के समान अंबर

---

(१) अरबी की जो हस्तलिखित मूल पुस्तक पाई जाती है उसमें प्रारंभ का अंश खंडित है। नष्ट हुए अंश में क्या था अथवा कितना अंश नष्ट हुआ है, इस विषय में ठीक ठीक सर्वथा कुछ कहा ही नहीं जा सकता, परंतु अब आरंभ में जो यह वर्णन है कि 'हरकंद' नाम का सागर तीसरा सागर है, इससे साफ़ पता चलता है कि लेखक ने इससे पहले निस्संदेह दो और सागरों की बाबत लिखा होगा। अस्तु हरकंद का हाल देते हुए लेखक ने दलारोवी की जो चर्चा की है उससे बलपूर्वक कहा जा सकता है कि दूसरा सागर जिसका वर्णन लेखक ने अपने ग्रंथ में किया होगा वह अवश्य दलारोवी ही होगा। लेखक फ़ारस का था। फारस और भारत के बीच में अरब सागर पड़ता है। इस कारण लेखक ने जिस सागर का वर्णन पहले सागर के नाम से किया होगा वह फ़ारस की खाड़ी तथा सागर या अरब का सागर रहा होगा। इस प्रकार तीनों सागरों का प्रकरण मिल जाता है।

को समुद्र की तह से निकालकर किनारे पर लाकर डाल देता है[1]।

द्वीप विषयक अन्य बातें

ये द्वीप जो एक स्त्री के अधिकार में हैं बिलकुल नारियल के वृक्षों से भरे पड़े हैं। ये एक दूसरे से एक, दो, तीन अथवा चार फ़रसख़[2] की दूरी पर हैं, सबमें मनुष्य बसते हैं और नारियल के बहुत से वृक्ष हैं। यहाँ के लोगों की संपत्ति कौड़ी है, यहाँ तक कि राजेश्वरी के कोष में भी कौड़ियाँ ही होती हैं। लोग कहते हैं कि इन द्वीपों के निवासियों से बढ़कर कोई और कारीगर होता ही नहीं, क्योंकि वे नारियल[3] की छालों की पूरी कमीज़, बाँह, कली और जेब सहित सब एकही साथ बना लेते हैं। वे नौकाएँ और घर भी इन्हीं वृक्षों से बना लेते हैं। इनके अतिरिक्त वे लोग कारीगरी के कार्यों में भी चतुर हैं। जब पानी

---

(१) अंबर के विषय में विशेष विवरण के लिये परिशिष्ट का अंक २ देखिए।

(२) फ़रसख़ से यदि 'फ़रसंग' (فرسنگ) मतलब है, तो ज्ञात हो कि एक फ़रसंग में तीन मील होते हैं। अंग्रेज़ी में फ़रसख़ को 'लीग' कहते हैं।

(३) भारतीय महासागर के लगभग सारे टापुओं में नारियल बहुत होता है और यह टापू के निवासियों के निमित्त बड़ा उपयोगी होता है। देखो परिशिष्ट—२, 'नारियल'।

के ऊपर जीवित कौड़ियाँ आ जाती हैं तो लोग नारियल की डालियों को पानी में फेंक देते हैं; उस समय कौड़ियाँ उनमें चिपट जाती हैं। वे लोग इन कौड़ियों को 'कब्तज' कहते हैं[1]।

लंका द्वीप

इन द्वीपों के बाद दूसरा टापू सरनदीब[2] अर्थात् सरनद्वीप है। हरकंद सागर में जो द्वीपसमूह 'दबैजात'[3] कहलाते हैं उन सबमें तथा इन द्वीपों में यह टापू प्रधान है। लंका के चारों ओर समुद्र है। इसमें कई स्थान ऐसे हैं जहाँ से मोती निकाले जाते हैं[4]।

---

(१) कौड़ियों के विषय में अधिक देखो परिशिष्ट—४, 'कौड़ियाँ'।

(२) सरनदीब अर्थात् सरनद्वीप का अभिप्राय लंका टापू से है, जिसके नाम से अशिक्षित भी अपरिचित नहीं हैं। लंका को सिंहलद्वीप अथवा सिलोन भी कहते हैं। परंतु अरबी ग्रंथों में सरनदीब (سرندیب) शब्द का ही प्रयोग पाया जाता है। अरबी भाषा में 'प' अर्थात 'पे' (پ) अक्षर नहीं होता, उसके स्थान पर 'ब' अर्थात 'बे' (ب) से काम लिया जाता है। अतः न्यून परिवर्तन के बाद सरनद्वीप शब्द से सरनदीब शब्द बन गया है। सौंदर्य के कारण लंका 'समुद्र का हीरा' भी कहा जाता है।

(३) ईस्ट इंडीज़ आयलैंडस को दबैजात (دبیجات) कहा गया है।

(४) लंका के पास समुद्र से आज कल भी मोती निकाले जाते हैं।

परम पितामह बाबा आदम का पग-चिह्न

लंका द्वीप ही की भूमि में रोहोन[१] नाम का एक पर्वत है। उसी पर पूज्य बाबा आदम (स्वर्ग से) उतरे थे। उनके एक पग का चिह्न उस पर्वत की चोटी पर एक पत्थर की चट्टान में अंकित पाया जाता है। इस पर्वत की चोटी पर उनके एक ही पग का चिह्न है और कहा जाता है कि पूज्य बाबा आदम ने दूसरा पग समुद्र में रक्खा था। लोगों का कथन यह भी है कि वह पग-चिह्न जो पर्वत की चोटी पर है लगभग सत्तर हाथ (लंबा) है[२]। इस पर्वत के समीप लाल पीले और नीले रत्नों की खानें हैं। इस टापू में दो राजा हैं। यह टापू बहुत लंबा चौड़ा है। इसमें सुगंधित लकड़ियाँ,[३] सोना और अमूल्य पत्थर पाए जाते हैं। समुद्र से मोती निकाले जाते हैं। और शंख[४] भी पाए जाते हैं। शंख वास्तव में एक

---

(१) सिंहाली ग्रंथों में दक्षिणी लंका का नाम भी रोहोन लिखा है। रोहोन पहाड़ को आज कल "कोह-आदम" (کوہ آدم) अर्थात् आदम का पर्वत कहते हैं। संस्कृत लेखकों ने उस पर्वत का नाम रोहणाचल लिखा है जहां से रत्न निकलते थे।

(२) पूज्य बाबा आदम के पगचिह्न के संबंध के विशेष रूप से परिशिष्ट, अंक ५ में लिखा गया है। इस संबंध की कई बातें अति मनोरंजक हैं।

(३) देखो परिशिष्ट—६, 'सुगंधित लकड़ियां अर्थात् ऊद' (عود)।

(४) देखो परिशिष्ट—७, 'शंख'।

प्रकार की करनाई[1] है जिसको कि यहां के लोग फूँक मार कर बजाते हैं और बहुत अमूल्य समझते हैं।

रामनी नाम का एक बड़ा टापू

इसी (हरकंद) सागर में (चीन की तरफ़ से) लंका की ओर आते हुए बहुत से टापू पड़ते हैं, परंतु बड़े बड़े टापुओं की संख्या बहुत ज्यादा नहीं है। इन्हींमें से एक का नाम रामनी[2] है। उसमें कई राजा हैं। उसका फैलाव आठ अथवा नौ सौ फरसख़ का बतलाया जाता है। उसमें सोने की खानें हैं, और उस चीज़ की भी खानें हैं जिसको लोग 'फ़न्सूर'[3] कहते हैं। वह वास्तव में एक बढ़िया क़िस्म का कपूर होता है।

---

(१) अरबी के मूल पाठ में 'बूक़' (بوق) शब्द है। वह करनाई, सरनाई, नफ़ीरी, तुरही, नृसिंहा आदि का भी सूचक हो सकता है।

(२) रामनी को अब सुमात्रा कहते हैं।

(३) फ़न्सूर वही वस्तु है जिसको भीमसेनी कपूर कहते हैं। सुलैमान का लेख इस बात का सूचक है कि यह खान से निकलता है, परंतु निर्विवाद रूप से संदेहरहित ठीक ठीक बात यह है कि भीमसेनी कपूर अथवा किसी प्रकार का भी कपूर किसी स्थान में भी खान से नहीं निकलता। वास्तव में यहां सुलैमान की भूल पाई जाती है। इसी प्रकार इस संबंध में अनेक लोगों ने भी सर्वथा बहुत भूल की है। देखो परिशिष्ट—८, 'कपूर'।

नियान नामी टापू

इस सागर के सारे टापू एक दूसरे से बिलकुल मिले जुले हैं। इनमें से नियान[1] नाम के एक टापू में सोना बहुत ज्यादा होता है। वहां के निवासियों का भोजन नारियल है। नारियल से ही वे लोग अपने शरीर का बनाव सिंगार करते हैं और उसीका तेल शरीर पर मलते हैं।

शत्रु-वध से विवाह संस्कार

इस देश (टापू) वासियों में से जब कोई मनुष्य इस बात का इच्छुक होता है कि विवाह करे तब वह उस समय तक विवाह का अधिकारी नहीं समझा जाता जब तक कि वह अपने शत्रुओं में से किसी मनुष्य के सर की खोपड़ी प्राप्त न कर ले। इस प्रकार जब वह अपने दो शत्रुओं का वध करता है तो दो स्त्रियों के साथ विवाह करने का अधिकारी हो जाता है, यहां तक कि यदि वह पचास शत्रुओं का वध करे तो पचास खोपड़ियों के कारण पचास स्त्रियों से शादी कर सकेगा। इस प्रथा का कारण यह है कि उनके शत्रु बहुत से हैं। अतः जो उनके वध में बहुत ज्यादा भाग लेता है वह उनमें अति श्रेष्ठ गिना जाता है।

---

(१) सुमात्रा के पूर्व में नियास नामी एक टापू है। नियान का संकेत उसी की ओर मालूम होता है।

नर-भक्षक मनुष्य-जाति

रामनी टापू में हाथी बहुत होते हैं। पतंग की लकड़ी[1] और बेंत[2] की भी कमी नहीं है। इसीमें मनुष्यों की एक एक जाति ऐसी भी है जो मनुष्यों को हड़प कर जाती है। इसी टापू से हरकंद और शलाहत नाम के दोनों सागर विभक्त हो जाते हैं।

नंगे मनुष्य

इस टापू से परे कुछ टापू हैं जोकि लेंजवालूस[3] के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें आबादी अच्छी है। यहाँ के पुरुष तो बिलकुल नंगे ही रहते हैं पर स्त्रियाँ भी एक प्रकार से नंगी ही रहती हैं क्योंकि वे केवल अपने गुप्तांगों को ही वृक्षों के पत्तों से ढँके रहती हैं। जब जहाज़[4] गुज़रते हैं तब वे लोग अपनी छोटी तथा बड़ी बड़ी नौकाओं को लेकर जहाज़ों के निकट आ जाते हैं और अंबर और नारियल को लोहे के बदले में बेचते हैं। यहाँ के निवासियों को वस्त्रों की आवश्यकता पड़ती ही

---

(१) देखो परिशिष्ट—९, 'पतंग की लकड़ी'।

(२) देखो परिशिष्ट—१०, 'बेंत'।

(३) सब लेखकों का मत है कि लेंजवालूस का संकेत निकोबार के टापुओं की ओर है। ये टापू अंडमन अर्थात् कालेपानी के दक्षिण की ओर हैं।

(४) प्राचीन काल के चीनी तथा भारतीय जहाज़ों के विषय में देखो परिशिष्ट—११, 'जहाज़'।

नहीं, क्योंकि यहाँ न तो सख़्त गरमी पड़ती है और न कड़ाके का जाड़ा ही।

नर-भक्षक और नंगे मनुष्य

इन टापुओं से परे दो टापू[1] हैं। उन्हींके बीच में अंडमन सागर है। उन दोनों टापुओं के निवासी मनुष्यों को जीवित ही खा जाते हैं। ये लोग रंग के काले कलूटे होते हैं। इनके बाल घूँघरवाले होते हैं। इनकी आँखें और मुख बड़े घिनौने होते हैं। इनकी टाँगें भी कुछ कम लंबी नहीं होतीं। एक मनुष्य की पौली तो एक हाथ के लगभग लंबी थी। लोग सर्वथा नंगे ही रहते हैं। इनके पास नौकाएँ नहीं हैं, नहीं तो ये लोग अपने निकट से आने जानेवालों को खा जाते। ऐसा भी हुआ है कि वायु के समुचित न होने के कारण समुद्र में जहाज़ों की चाल धीमी रही और ऐसी दशा में जहाज़ियों का जल खतम हो चुका और जहाज़ी पानी के निमित्त यहां आगए तो अनेक बार उन लोगों को दुःख भोगना पड़ा अर्थात् कुछ लोग अवश्य इनके शिकार बने और बहुतेरे भाग निकले।

---

(१) दो टापुओं का संकेत अंडमन नामी टापुओं की ओर है, जो कि कई भागों में विभक्त हैं और भिन्न भिन्न नामों से विख्यात हैं, क्योंकि उन्हींके बीच में अंडमन सागर है। अंडमन ही को काला पानी कहा जाता है जहां बड़े बड़े अपराधी आजकल सज़ा भुगतने के लिये भेजे जाते हैं।

चाँदी की खानोंवाला टापू

यहाँ से कुछ आगे सीधे मार्ग से कुछ दूरी पर पहाड़ अर्थात् पहाड़ी टापू हैं। लोग बतलाते हैं कि उनमें चाँदी की खानें हैं। सीधे जहाज़ी मार्ग के न होने के कारण प्रत्येक जहाज़ यहाँ नहीं पहुँच सकता। यहाँ खशनई नाम का ए. पहाड़ है। एक बार ऐसा हुआ कि एक जहाज़ इस टापू के निकट से गुज़रा, लोगों ने एक पहाड़ देखा तो वहाँ जाने का विचार किया। जब प्रातःकाल का समय हुआ तो एक नौका किनारे पर भेजी गई कि कुछ लोग लकड़ी काट लावें। पर जब उन्होंने अग्नि प्रज्वलित की तो चाँदी बहने लगी। ऐसा देखकर वे लोग जान गए कि यहाँ चाँदी की खान है सो उन्होंने मनमानी चाँदी वहाँ से भर ली पर जब वे चले तो समुद्र में बड़ा तूफ़ान उठा, ऐसा होने पर सबकी सब चाँदी उन्होंने समुद्र में फेंक दी। इसके पश्चात् लोगों ने फिर उस पहाड़ तक पहुँचने की तैयारी की किंतु वह स्थान उन्हें मिला ही नहीं।

सागर के असंख्य टापू

इसी टापू के समान सागर में अन्य बहुत से टापू हैं यहाँ तक कि उनकी गणना असंख्य है। इन्हींमें से ऐसे भी टापू हैं जिनमें पहुँचना भी अति दुस्तर है और अनेक ऐसे भी हैं कि माँझियों को उनके विषय में अभी तक कुछ मालूम ही नहीं है।

बादल में लंबी पतली जीभ

इसी सागर के विषय में बहुधा यह भी बतलाया गया है कि इस सागर में सफेद बादल जहाज़ों पर साया डाल देता है। फिर लंबी पतली जीभ उससे बाहर निकलती है और समुद्र के जल तक पहुँचती है। उस समय समुद्र का जल आँधी के चक्करदार खंभे के समान ऊपर उठता है[१]। यदि कोई जहाज़ इस उबाल में आ पड़ता है तो वह नष्ट हो जाता है। इसके पश्चात् बादल ऊपर उठ जाता है और खूब बरसता है। मैं नहीं जानता कि यह बादल पानी को समुद्र से खींच लेता है अथवा इसमें क्या रहस्य है।

पानी में वायु की प्रचंडता

इन समुद्रों में से प्रत्येक में प्रचंड वायु के कारण जल में बहुत उफान तथा उबाल उठा करते हैं यहाँ तक कि समुद्र का जल हाँडियों के समान उबलता है। फिर जो कुछ समुद्र में होता है वह निकलकर टापुओं के किनारे आ पड़ता है, यहाँ तक कि जहाज़ भी उससे टकरा कर टूट जाते हैं। बड़ी बड़ी मुर्दा मछलियाँ भी किनारे आ पड़ती हैं। कभी कभी पहाड़ और चट्टानें इस प्रकार किनारे पर आ पड़ी हैं जैसे तीर कमान से निकलकर गिरता है। हरकंद सागर में जो वायु

(१) यह प्रकृति की एक साधारण घटना है जो प्रायः समुद्रों में हुआ करती है।

चलती है वह पश्चिम से सप्तर्षि तारों (उत्तर) की ओर चलनेवाली वायु नहीं है, परंतु उससे भी समुद्र में बड़ा उबाल पैदा हो जाता है, यहां तक कि समुद्र हाँड़ियों के समान खौलता है और वायु बहुत से अंबर को समुद्र से निकाल कर किनारे पर ला फेंकती है, परंतु समुद्र जितना ज़्यादा गहरा तथा नीचा होता है उतना ही ज़्यादा अंबर अधिक बढ़िया होता है। हरकंद सागर की लहरें जब बहुत ऊँची उठती हैं तब अग्नि के समान चमकती हैं। इसी सागर में 'लोख़म' नाम की एक शिकारी मछली होती है, वह मनुष्यों को लील(निगल) जाया करती है।

× × × × × × × × × × × × × × × × × ×

चीन का ख़ानफ़ू नगर

× × × × × ×

सो वस्तुएँ कम मिलती हैं। ख़ानफ़ू [1] (चीन देश) में प्राय: अग्नि के लग जाने के कारण वस्तुओं की कमी हो जाती है।

---

(१) ख़ानफ़ू (خانفو) चीन में यांगटिसीक्यांग नदी के दहाने पर एक बड़ा नगर तथा बंदर था। अब यह कानपू नाम से प्रसिद्ध है परंतु इसका बंदरगाह समुद्र के प्रकोप से नष्ट हो चुका है। इसका वर्णन कई प्राचीन ग्रंथों में पाया जाता है। अबूज़ैद सीराफ़ी कहता है कि ख़ानफ़ू को एक बार राजद्रोहियों ने लूट लिया और डेढ़ लाख मुसलमान तथा अन्य विदेशी जिनमें यहूदी और ईसाई भी संमिलित थे स्वर्ग को पहुँचाए गए। इससे भली भाँति अनुमान किया जा सकता है कि कितने व्यापारी ख़ानफ़ू तथा चीन में जाते थे।

इसके अतिरिक्त अन्य कारण भी हैं जिनसे वस्तुओं की बहुधा कमी हो जाया करती है। इस नगर में जहाज़ ठहरते हैं। अरब और चीन वासियों के व्यापार का यह केंद्र है। आग भी यहाँ बहुत लगा करती है, कारण यह है कि यहाँ के लोगों के घर लकड़ी अथवा चिरे हुए बाँसों[1] के बने हुए हैं। वस्तुओं की कमी हो जाने का एक कारण यह भी है कि आने जानेवाले जहाज़ टूटफूट भी जाया करते हैं। आने जानेवाले जहाज़ों का नुकसान यों भी हो जाता है कि वे या तो लूट लिए जाते हैं अथवा किसी लंगरगाह में अधिक काल तक ठहरने के लिए विवश हो जाते हैं। ऐसी अवस्था के होने के कारण अरब के व्यापारी (चीन तक न पहुँच सकने पर) अपना माल अरब को छोड़ किसी अन्य देश में ही बेच डालते हैं। और जब वायु उनको अरब के यमन नामी भाग अथवा अरब के अन्य किसी भाग में उड़ा ले जाती है तो लोग वहीं अपना माल असबाब बेंच डालते हैं। परंतु कभी कभी लोग अपने जहाज़ों को ठीक करने के निमित्त अथवा अन्य किसी कारण से (ख़ानफ़ू में) बहुत काल तक ठहरे रहते हैं।

चीन के ख़ानफ़ू नगर का मुसलमान क़ाज़ी

सुलैमान सौदागर का कथन है कि व्यापार के केंद्र ख़ानफ़ू में अपने स्वधर्मियों के लिए एक मुसलमान क़ाज़ी

(१) चीन में बाँस तथा उनकी उपयोगिता के विषय में देखो परिशिष्ट—१२, 'चीन में बाँस'।

नियत है। उसकी नियुक्ति चीन के राजा की ओर से है। वह उन सब मुसलमानों[1] का जो इस भाग में आते हैं क़ाज़ी (न्यायाधीश) है। वह ईद के दिन सारे मुसलमानों को नमाज़ पढ़ाता है, सदुपदेश देता है और मुसलमानों के राजा के लिये आशीर्वाद देता है। निस्संदेह इराक देश के व्यापारी भी इस क़ाज़ी को पूर्ण रीति पर अपना क़ाज़ी समझते हैं और इसकी आज्ञाएँ जो ईश्वरीय ज्ञान, क़ुरान शरीफ़, तथा मुसलमानी धर्म्म की आज्ञाओं के अनुसार होती है सहर्ष पाली जाती हैं।

अरब सागर के स्थान तथा समुद्री मार्ग

उन स्थानों के विषय में जहाँ जहाज़ जाते हैं अथवा जहाँ से होकर गुज़रते हैं लोगों का कथन है कि चीन के

---

(१) चीन में मुसलमानी धर्म्म पूर्व और पश्चिम दोनों से पहुँचा है। अरब के जो व्यापारी समुद्री मार्ग से पूर्व में पहुँचे उनकी बदौलत वह पूर्व में पहुँचा और जो लोग विजय की पताका उठाए हुए पश्चिम की ओर से प्रविष्ट हुए उनकी बदौलत उधर फैला। इस प्रकार चीन में इस समय कई करोड़ मुसलमान हैं और दिन प्रति दिन इनकी संख्या वहाँ खूब बढ़ भी रही है। एक रूसी लेखक का मत है कि आश्चर्य नहीं कि कुछ काल बाद सारा चीन मुसलमान हो जाय। मुसलमानों को यहाँ केवल धार्म्मिक स्वतंत्रता ही प्राप्त नहीं है बल्कि राज्य की ओर से फ़ौजी और नागरिक दोनों विभागों में उनके लिये स्थान खुले पड़े हैं।

बहुतेरे जहाज़ सीराफ़[1] (फ़ारस देश) में माल लादते हैं। सीराफ़ में ही बसरा, उम्मान तथा अन्य स्थानों की चीज़ें आजाया करती हैं। इसके सिवा यह भी बात है कि (फ़ारस की खाड़ी तथा अरब) सागर में बहुत से तूफ़ान आते हैं और कई स्थानों में पीने के लिये पानी की बड़ी कमी रहती है।

सीराफ़ से बसरा १२० फरसख़ की दूरी पर (समुद्री मार्ग से) है। सौदागर लोग जब बसरा में माल लादते हैं तब यहीं से पानी भी ले लेते हैं। इसके पश्चात् लोग वहाँ से रफ़ूचक्कर होते हैं और बाद को उस स्थान का मार्ग लेते हैं जो कि मसक़त के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान उम्मान (अरब) प्रांत के अंतिम भाग में है और सीराफ़ से यह स्थान २०० फ़रसख़ की दूरी पर है।

फ़ारस की खाड़ी के पूर्वीय भाग में सीराफ़ और मसक़त के बीच (अरब देश) में सफ़ाक़ समुदाय के लोगों का सैफ़ नाम का एक नगर है। इसी सागर अथवा खाड़ी के पूर्वीय भाग में ही कावां वंशजों का एक टापू है। इनके सिवा उम्मान नाम के पहाड़ भी हैं; इनमें एक स्थान दोरदुर कहलाता है। यह वास्तव में दो पहाड़ों (या दो पथरीली चट्टानों) के बीच में एक बड़ा तंग समुद्री मार्ग है जिसमें से केवल छोटी

(१) सीराफ़ (سیراف) का बंदरगाह फ़ारस के प्रसिद्ध नगर शीराज़ से दक्षिण तथा कुछ पश्चिम के कोने पर था। नक़्शे से ठीक स्थान का पता लग सकता है।

छोटी नौकाएं गुज़र सकती हैं और चीनी नौकाओं (तथा जहाज़ों) का गुज़र नहीं हो सकता। यहीं पर कुसैर और ओबैर नाम के दो पहाड़ भी हैं। वे प्रायः समुद्र में ही डूबे रहते हैं और बहुत ही कम जल के ऊपर दीख पड़ते हैं। हम लोग जब पहाड़ों को पार कर चुकते हैं तब सोहार[1] नाम के स्थान में जाना होता है। फिर मसक़त में कुँओं का पानी भर लेते हैं। यहीं (मसक़त में) उम्मान की बकरियाँ भी मिल जाती हैं ।

अरब और चीन का समुद्री मार्ग

अरब देश के मसक़त स्थान से ही भारत के लिये जहाज़ छूटते हैं। ये जहाज़ सबसे पहले कोलममली[2] में पहुँचते हैं। वायु के साधारण होने की अवस्था में मसक़त से कोलममली का रास्ता एक मास का है। कोलममली वास्तव में इसी नाम के प्रांत में सीमांत स्थान है और शस्त्रालय अर्थात् फ़ौजी छावनी भी है। यहाँ चीनी जहाज़ आते हैं। यहाँ के कुँओं का जल बड़ा मीठा होता है। चीनियों से

---

(१) सोहार (صحار) नाम का स्थान उम्मान की खाड़ी में मसक़त और उमुंज़ के जल डमरूमध्य के बीच में है।

(२) कोलम को कोलममली अथवा कोकममली भी लिखा गया है। आजकल उसको क्विलोन कहते हैं। ट्रावंकोर राज्य में आज भी यह एक प्रधान नगर तथा बंदर है। देखो परिशिष्ट—१२, 'कोलम'।

पानी के बदले एक हज़ार दिरहम[1] और अन्य लोगों से एक से लेकर दस दीनार[2] (अशरफ़ी) तक लिए जाते हैं।

हरकंद सागर का एक टापू

कोलममली से हरकंद का मार्ग भी मसक़त से कोलम-मली के समान लगभग एक मास का है। कोलममली में पानी लेकर जहाज़ी लोग हरकंद का मार्ग पकड़ते हैं। हरकंद को डाँककर लेंजबालूस नाम के टापू में पहुँचते हैं। यहाँ के निवासी न तो अरबी भाषा ही समझते हैं और न सौदागरों की दूसरी भाषा ही समझ पाते हैं। वस्त्र बिलकुल नहीं धारण करते। रंग के गोरे चिट्टे हैं। और युवा अवस्था में भी इनके डाढ़ी नहीं आती है।

लोग कहते हैं कि इनकी स्त्रियाँ कभी दिखलाई ही नहीं पड़ीं। ये लोग केवल एक लकड़ी को बीच में से खोदकर छोटी सी नौका बना लेते हैं। उसीमें सवार होकर हमारे पास आते हैं। इनके पास नारियल, केला, ऊख, और नारियल का जल होता है। नारियल का जल सफेद होता है। जिस समय वह नारियल से निकाला जाता है यदि

(१) एक दिरहम (درهم) का मूल्य वर्तमान समय के ढाई आनों के बराबर ठहरता है।

(२) दीनार (دينار) को अशरफ़ी समझना चाहिए।

वह उसी समय पिया जाय तो शहद के समान मीठा होता है, यदि कुछ देर पड़ा रह जाता है तो मदिरा बन जाता है, कुछ अधिक काल तक पड़े रहने पर सिरका बन जाता है। इसको ये लोग लोहे के बदले में देते हैं।

अनेक बार ऐसा भी हुआ है कि उन्हें अंबर का कोई टुकड़ा मिला तो उन्होंने एक लोहे के टुकड़े के बदले अंबर का टुकड़ा दे दिया है। ये लोग कोई भी भाषा नहीं समझते, इस कारण हाथ के इशारों से ही लेन देन करते हैं। परंतु व्यवहार में बड़े चतुर होते हैं, यहाँ तक कि अनेक बार ये लोग नए सौदागरों से माल झटक कर ले गए, पर उनको कुछ भी न दे गए।

कलाहबार

लेंजबालुस से जहाज़ कलाहबार[1] का मार्ग पकड़ते हैं। इसी नाम का एक राज्य भी है। बार शब्द का प्रयोग प्रत्येक तट के लिये किया जाता है। यहाँ का राज्य वास्तव में ज़बज[2] के अधीन है जो भारत की दाहनी (पूर्व) ओर है। यहाँ (कलहबा) के निवासी छोटे बड़े सब के सब एक ही तरह को वस्त्र धारण करते हैं। जहाज़ी लोग प्रायः यहाँ से पानी लेते

(१) एक फ्रांसीसी लेखक इस स्थान को मलाया प्रायद्वीप के पश्चिमी तट पर बतलाता है और वास्तव में यह बात ठीक भी है।

(२) जावा द्वीप को ज़बज (زبج) कहते थे।

हैं। यहाँ के कुओं का पानी बड़ा मीठा होता है। नगर-निवासी कुँओं के पानी को चश्मों तथा वर्षा के पानी से श्रेष्ठ समझते हैं। इस स्थान का मार्ग हरकंद से एक मास का है और हरकंद का मार्ग कोलममली से एक मास के लगभग है।

वतूमा, कदरंज और संफ

कलाहबार से जहाज़ उस स्थान में पहुँचते हैं जो कि वतूमा[1] के नाम से विख्यात है। सारा सफ़र लगभग दस दिनों का है। यदि कोई चाहे तो यहाँ भी मीठा पानी मिल जाता है। इसके बाद दस दिन के मार्ग की दूरी पर कदरंज[2] नाम का एक स्थान अथवा टापू है। यहाँ भी मीठा पानी पर्याप्त है। निदान जिस प्रकार इन टापुओं में मीठा पानी पाया जाता है उसी तरह भारतीय सागर के सारे टापुओं में कुओं के खोदने से मीठा जल मिल जाता है।

कदरंज नामी टापू में एक बड़ा ऊँचा पहाड़ है। इसमें प्राय: भागे हुए दास तथा चोर बसे हैं। इस टापू के बाद

---

(१) इसकी स्थिति सिंहापुर के दक्षिणी भाग में कुछ पूर्वीय कोने पर ठहरती है। वास्तव में यह एक छोटा सा टापू है।

(२) स्याम की खाड़ी के दक्षिणी भाग अर्थात् मलाया प्रायद्वीप के पूर्व में परस्पर मिले जुले पास ही पास कई टापू हैं, उन्हीमें से एक की ओर संकेत है।

दस दिन के मार्ग की दूरी पर संफ[1] नामी स्थान है। वहां का जल भी मीठा होता है। सुप्रसिद्ध सुगंधित संफी ऊद (लकड़ी) वहीं से लाई जाती है। वहां एक राजा है। लोग गेहुँए रंग के होते हैं और दो वस्त्र धारण करते हैं।

संदरफुलात, संजी और चीन के फाटक

संफ से दस दिन की दूरी पर संदरफुलात[2] नामी टापू है। वहाँ से पानी लेकर जहाज़ी लोग यहीं का मार्ग पकड़ते हैं।

---

(१) चीन के दक्षिणी भाग (ब्रह्मा के पूर्व) की भूमि जो अब स्याम कहलाती है, पहले चंपा नाम से प्रख्यात थी। उसी चंपा को सुलैमान ने संफ (صنف) लिखा है। कारण यह है कि अरबी में 'च' (چ) का अभाव होने से उसके बदले 'स' अर्थात् 'साद्' (ص) का प्रयोग होता है, जैसे चीन को सीन (صين) लिखते और बोलते हैं। और 'प' (پ) के स्थान की पूर्ति 'फ़' (ف) से भी की जाती है जैसे कानपूर को अरबी में कानफूर लिखा जाता है। इस प्रकार अति न्यून परिवर्तन से चंपा को 'संफ' लिखा है। ऐसा भी मालूम होता है कि कंबोडिया का एक बड़ा भाग भी चंपा में संमिलित था। पूर्व की ओर मीकांग नदी तक चंपा की सीमा थी। मीकांग की पूर्वीय भूमि (एनाम राज्य) का नाम कमार (قمار) था। इसीका वर्णन कई अरबी ग्रंथों में है।

(२) संदरफुलात के विषय में ऐसा मालूम होता है कि संदर फुलात शब्द जिस शब्द के निमित्त लिखा गया है उसमें 'स' अर्थात् 'साद्' के स्थान पर 'च' और 'फ' के बदले 'प' का उच्चारण अवश्य था, क्योंकि जिस प्रकार चंपा के बदले संफ लिखा गया है उसी प्रकार संभवतः इसमें भी परिवर्तन हुआ होगा।

यहाँ का भी जल मीठा है। यहाँ के बाद संजी सागर¹ में आना पड़ता है। फिर तो चीन के फाटक ही हैं, किंतु चीन तक पहुँचने से पहले कई पथरीली चट्टानें तथा पहाड़ पड़ते हैं और प्रत्येक दो पहाड़ों के बीच से ही मार्ग है जिससे कि जहाज़ गुज़रते हैं। जहाज़ जब संदरफुलात से सुरक्षित निकल जाते हैं तब एक मास में चीन पहुँच जाते हैं। परंतु चट्टानों से गुज़रने का मार्ग पूरे सात दिन का है। जहाज़ जब कि चीन के फाटकों से गुज़र जाता है तो जुआर-भाटे के पानी में (अर्थात् तट के पास) प्रविष्ट हो जाता है, फिर चीन देश के ऐसे स्थान में पहुँच जाता है जहाँ का जल अच्छा होता है और जहाँ जहाज़ खड़े होते हैं।

चीन और बंदरगाह ख़ानफ़ू का हाल

चीन का वह स्थान जहाँ जहाज़ लंगर डालते हैं वास्तव में ख़ानफ़ू के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ तथा चीन के अन्य

संदरफ़ुलात को आज कल पुलोकांडर कहते हैं। फ़ुलात का अर्थ 'टापू' है। कांडर के नाम से छोटे बड़े दो टापू हैं। पुलोकांडर शब्द को यदि कांडरपुलो से उलटा हुआ समझा जाय और फ़ुलात को पुलो का बहुवचन माना जाय तो कोई आपत्ति नहीं मालूम होती और कांडर-पुलो (चंदरपुलो) और संदरफ़ुलात दोनों के दोनों शब्द एक ही से ठहरते हैं। यह टापू 'कोचीन' चीन से दक्षिण की ओर है।

(१) टांकिन-खाड़ी अर्थात् दक्षिणी चीन सागर का उत्तरीय भाग संजी सागर कहलाता था।

सारे नगरों में भी नदियों तथा चश्मों का पानी मीठा होता है। इसके प्रत्येक भाग में बाज़ार हैं, और वे भली भाँति सुरक्षित हैं। सारे नगरों में शस्त्रालय और बड़ी बड़ी सड़कें हैं। खानफू में रात और दिन में दो बार जुआर-भाटा आता है। परंतु जुआर की अवस्था वैसी नहीं होती है जैसी बसरा और काबान वंशवालों के टापू के बीच में होती है अर्थात् जब चंद्रमा आकाश के मध्य में आ जाता है तब जुआर उत्पन्न हो जाता है। पर जब चंद्रमा उदय होता तथा डूबता है उस समय भाटा होता है। चीन के निकट से काबान वंशजों के टापू के निकट तक चंद्रमा के उदय होने के समय जुआर उत्पन्न हो जाया करता है, पर जब चंद्रमा मध्य आकाश में आ जाता है तो भाटा और जब डूबता है तो जुआर, बाद को जब बिलकुल ही डूब जाता है तो पानी उतर जाता है।

मुलजान का टापू

लोगों का कथन है कि भारतीय महासागर के पूर्वीय भाग में लंका और कलाह के बीच में मुलजान नामी एक टापू है। वहाँ के लोग काले कलूटे होते हैं और सदैव नंगे ही रहा करते हैं। वे लोग जब किसी प्रवासी मनुष्य को पा जाते हैं तब उसे उलटा टाँग देते हैं, फिर उसे काटकर कच्चा ही हड़प कर जाते हैं। उनकी संख्या कुछ कम नहीं। वे एक ही टापू में रहते हैं। उनका कोई बादशाह नहीं।

उनका भोजन मछली, केला, नारियल और गन्ना है। वहाँ जंगल और झीलें भी हैं।

उड़ने और नारियल पर चढ़ जानेवाली मछलियाँ आदि

लोग बतलाते हैं कि भारतीय महासागर के एक भाग में छोटी छोटी उड़नेवाली मछलियाँ होती हैं। ये पानी के ऊपर उड़ती हैं और इनको लोग पानी की टीड़ी कहते हैं। इनके सिवा इसी सागर में एक प्रकार की मछलियाँ और बतलाई जाती हैं। वे पानी से निकलकर नारियल के वृक्ष पर चढ़ जाती हैं और नारियल का पानी पीकर फिर समुद्र में लौट जाती हैं। लोग यह भी कहते हैं कि इसी सागर में एक जंतु केंकड़े के समान होता है। जब वह पानी से निकाल लिया जाता है तो पत्थर सा हो जाता है। एक मनुष्य ने बतलाया कि उससे एक प्रकार का सुरमा निकाला जाता है जो कि आँख के कई रोगों के लिये लाभदायक होता है[1]।

इसके सिवा लोगों का यह भी कथन है कि ज़बज (जावा द्वीप) के निकट एक पहाड़ है, उसको अग्नि का पहाड़ कहते हैं। कोई मनुष्य उसके समीप नहीं जा सकता। दिन में उससे धुआँ निकलता है। रात में अग्नि की प्रचंड लपटें उठती हैं।

---

(१) ऐसा ही जंतु हनान टापू की एक झील में पाया जाता है। पुर्तगीज़ इसका प्रयोग ज्वर में करते हैं।

उसके नीचे से एक तो मीठे ठंढे पानी का चश्मा निकलता है, दूसरा मीठे गर्म पानी का।

चीनियों के वस्त्र

चीन के सारे लोग गर्मी और जाड़ा दोनों में रेशम ही पहनते हैं[1]। बादशाह लोग बढ़िया किस्म का रेशम पहनते हैं और बाकी अन्य लोगों का पहरावा उनकी स्थिति के अनुसार होता है। जब जाड़े का मौसिम होता है तो एकही मनुष्य दो, तीन, चार, पाँच अथवा इनसे भी अधिक पाजामे अपनी शक्ति के अनुसार डाँट लेता है। सर्दी के भय से वे लोग खूब नीचे तक कपड़ा पहिनते हैं। गर्मी में लोग केवल एक ही रेशमी कमीज़ अथवा इसी प्रकार का कोई अन्य वस्त्र धारण करते हैं और साफा बिलकुल नहीं बाँधते।

चीनियों का खान पान

चीनी लोग चावल खाते हैं। प्रायः लोग चावल के सिवा कोशान (कढ़ी के ढंग की पतली वस्तु) भी पकाते हैं। फिर उसको चावल में डालकर खाते हैं। बादशाह लोग गेहूँ की रोटी तथा सारे पशु पक्षियों का मांस खाते हैं, यहाँ तक कि सुअर और अन्य जंतुओं को भी नहीं छोड़ते। यहाँ के फल सेब, आड़ू, नीबू, अनार, बिही, अमरूद, केला, गन्ना, ख़रबूजा, इंजीर, अंगूर, ककड़ी, खीरा, झरबैला, अखरोट,

(1) चीन में रेशम के विषय में देखो परिशिष्ट—१४, 'चीन में रेशम'।

बादाम, जलोज़ (جلوز), पिस्ता, आलूबुखारा, खुबानी, गुबैर अर्थात् संजद, और नारियल[1] हैं। खजूर के वृक्ष यहाँ अधिक नहीं हैं, केवल एक मनुष्य के घर में कुछ अपने वृक्ष हैं।

चीनियों में शराब का चलन नहीं

चीनियों के देश में शराब नहीं होती। वे लोग चावल से एक प्रकार की शराब तैयार करते हैं और उसीको पीते हैं। सिरका, ताड़ी और इसी प्रकार की अन्य चीजें भी वे लोग चावल ही से बनाते हैं। शराब तो वहाँ बाहर से भी नहीं आती। वे लोग शराब को जानते ही नहीं और न उसे पीते ही हैं।

चीनियों का रहन सहन

चीनी लोग स्वच्छता का विचार नहीं रखते। जब वे शौच जाते हैं तो पानी को काम में नहीं लाते, बल्कि कागज का प्रयोग करते हैं। वे लोग मुरदार तथा मुरदार के समान पदार्थों को खा जाते हैं। उनका हाल मजूसियों (ईरानी अग्नि पूजनेवाले लोगों) का सा है और उनका धर्म मजूसियों से वस्तुतः बहुत

(१) चीन में मेवों और फलों की कमी वर्तमान समय में भी नहीं है। कई बढ़िया मेवे और फल बहुतायत के साथ होते हैं यहां तक कि उतने किसी अन्य देश में नहीं होते। मार्को पोलो का कथन है कि चीन में अमरूद तौल में चार-पांच सेर तक का होता है और उसका गूदा हलवे से भी अधिक मीठा होता है।

कुछ मिलता जुलता है। उनकी स्त्रियाँ सिर खोले रखती हैं, सिरों में कंघे खोंसे रहती हैं। ऐसा भी होता है कि एक स्त्री के सिर में केवल हाथी दाँत के बीस बीस कंघे होते हैं। पुरुषों के सिरों पर एक विशेष प्रकार की टोपी होती है। चोरों के विषय में उनके यहाँ यह प्रथा है कि जिस समय वह पकड़ा जाय उसी समय मार डाला जाय।

(पहला खंड समाप्त)

दूसरा खंड ।

भारत तथा चीन संबंधी बातें

और

इन देशों के राजाओं के हाल

संसार के चार प्रधान राजा

भारतवर्ष और चीन के निवासी इस बात में सहमत हैं कि संसार के प्रधान राजा केवल चार ही हैं। इन चारों में से सर्वश्रेष्ठ बादशाह निर्विवाद रूप से उनकी दृष्टि में अरब का राजा है, क्योंकि अरब का राजा सब से अधिक शक्तिशाली, धनी, रोबदाबवाला और खुबसूरत है। निस्संदेह वह श्रेष्ठ धर्म्म (मुसलमानी धर्म्म) का भी बड़ा बादशाह है जिससे बढ़कर अन्य कोई वस्तु ही नहीं है। उसके बाद चीन का राजा अपने आपको संसार में दूसरा बादशाह ख़्याल करता है। इसके बाद तीसरा पद यूनान के बादशाह का है। फिर (भारत के राजा) बलहरा का (चौथा दर्जा) है जिसके कान छिदे हुए हैं।

भारतवर्ष का महाराजा बलहरा

बलहरा (بلهرا) भारतवर्ष में सब से बड़ा राजा है और सब भारतवर्षीय लोग उसके बड़प्पन को स्वीकार करते हैं। यद्यपि भारतवर्ष के राजाओं में से प्रत्येक राजा अपने राज्य का पृथक् पृथक् स्वामी है तथापि सब राजा बलहरा को अपना महाराजा समझते हैं। इस महाराजा के दूत जब राजाओं के यहाँ आते हैं तो राजा आदर के साथ उनका यथोचित मान करते हैं। यह महाराजा अरब-निवासियों के समान बड़ा दानी है। इसके अधिकार में बहुत से घोड़े[1] और हाथी[2] हैं। लक्ष्मी भी इसके पास बहुत है। इसके चाँदी के सिक्के का नाम तातरिया (طاطريه) है। यह सिक्का अरब देश के सिक्के से डेढ़ गुना भारी होता है। इस सिक्के में सन् की तारीख़ उस बादशाह के समय से होती है जो राज्य का आदि तथा सर्वमान्य राजा होता है। इनके यहाँ अरब-निवासियों की तरह तारीख़

---

(१) लड़ाई के निमित्त घोड़े आज भी बहुत उपयोगी माने जाते हैं। प्राचीन काल में भी वे कुछ कम उपयोगी न समझे जाते थे। आज कल के समान पहले भी इनकी संख्या सेना में बहुत ज़्यादा होती थी। देखो परिशिष्ट—१५, 'सेना में घोड़ों की अधिकता'।

(२) प्राचीन समय में भारत के जिस राजा के पास जितने ज़्यादा हाथी होते थे वह उतना ही अधिक प्रतापी तथा शक्तिशाली समझा जाता था। हाथी लड़ाई के लिये परम उपयोगी समझे जाते थे। देखो परिशिष्ट—१६, 'प्राचीन काल में हाथी'।

की गणना हज़रत मुहम्मद साहब के समय से नहीं है बल्कि तारीख का संबंध राजाओं के साथ है । इनके बादशाहों की आयु प्राय: बहुत हुआ करती है । बहुत से बादशाहों ने प्राय: पचास पचास वर्ष तक राज्य किया । बलहरा के राज्य के लोग प्राय: ख़्याल करते हैं कि महाराजा अरब-वासियों के साथ प्रेमभाव रखता है, इस कारण हमारे राजाओं की आयु तथा राज्य-काल में वृद्धि होती है । भारत-वर्ष के सब राजाओं में से बलहरा ही अरबों के साथ सब से अधिक प्रेमभाव रखता है और इसीके समान इसके राज्यवाले भी अरबवालों के साथ व्यवहार करते हैं ।

महाराजा बलहरा और अन्य राजा

जिस प्रकार (फ़ारस देश के) प्रत्येक राजा को किसरा[1] (खिसरो) कहा जाता है उसी तरह यहाँ के प्रत्येक राजा को बलहरा[2] कहा जाता है । यह कोई विशेष नाम नहीं है । बलहरा के राज्य की भूमि का श्रीगणेश समुद्र के किनारे से

---

(१) किसरा (كسرى) शब्द निस्संदेह फ़ारसी का खिसरो अर्थात् खुसरो, خسرو शब्द है, पर अरबी ख़राद पर चढ़कर यह ऐसा बन गया है ।

(२) मान्यखेट (मालखेड़) के राष्ट्रकूट (राठौड़) वंशी राजाओं के खिताब वल्लभ (श्रीवल्लभ, वल्लभराय आदि) का बिगड़ा हुआ रूप बलहरा है । (इसके लिये देखो खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, का छपा हुआ टॉड राजस्थान, पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा का टिप्पण, पृ० २२६-६०),

3119

होता है जो कि 'कुंकुम' (कोंकन) के नाम से विख्यात है। दूसरी ओर इसका राज्य चीन की भूमि से मिला हुआ है। इसके चारों ओर बहुत से राजा हैं जो इसके साथ युद्ध ठानते हैं, परंतु यह अपनी ओर से किसीपर धावा नहीं करता। इनमें एक राजा जुरुज़[1] कहलाता है। उसके पास बहुत बड़ा लश्कर है। उसके घोड़ों के समान भारतवर्ष में किसीके भी पास घोड़े नहीं हैं। वह अरबवालों का शत्रु है, परंतु इस बात को अवश्य स्वीकार करता है कि अरब का ही बादशाह सब से अधिक शक्तिशाली है। भारत में उससे बढ़कर मुसलमानी धर्म्म का शत्रु कोई और नहीं है। उसका राज्य ज़मीन की जिह्वा (समुद्र में निकली हुई भूमि, प्रायद्वीप) पर है। उस राज्य में द्रव्य बहुत है। ऊँट और पशु भी बहुत हैं। यहाँ के लोग चाँदी का व्यापार सोने के साथ करते हैं और यह भी कहा जाता है कि उस राज्य में चाँदी की खानें हैं। भारतव[र्ष] में कोई और राज्य चोरी से इतना अधिक सुरचित नहीं है जितना वह राज्य है[2]।

---

(१) जुरुज़ या जुज़र (جرز یا جزر) पाठ अरबी पुस्तकों में मिलता है। यह नाम प्राचीन गुजरात (गुर्जर, गुर्जरत्रा) देश का सूचक है। इस समय गुजरात से राजपूताने के दक्षिण के उक्त नाम के देश का ग्रहण किया जाता है परंतु पहले मारवाड़ के उत्तरी विभाग से लगाकर लाटदेश की उत्तरी सीमा तक का सारा देश गुर्जर कहलाता था। देखो परिशिष्ट-१०, 'गुर्जर गुर्जरदेश (गुजरात)'।

(२) सुलैमान ने केवल इसी राज्य को चोरी से अधिक सुरचित

भारत के अन्य प्रतिष्ठित राज्य

जुरुज़ राज्य के पास ही ताफ़क़ नाम का राज्य है। यह राज्य छोटा सा ही है। यहाँ की स्त्रियाँ सारे भारत की स्त्रियों से सुंदर हैं। इसके पास छोटा सा ही लश्कर है इस कारण यह अपने आस पास के राजाओं के पराधीन है। यह भी बलहरा के समान अरबवालों के साथ मित्र भाव रखता है। बलहरा, जुरुज़ और ताफ़क़ नामी राज्यों से बिल्कुल मिला जुला रोहमी का राज्य है। रोहमी का राज्य कोई बहुत बड़ा राज्य नहीं है परंतु यह जुरुज़ के राजा के साथ युद्ध ठानता है और जिस प्रकार जुरुज़ के साथ युद्ध करता है उसी प्रकार बलहरा से भी लड़ता है। रोहमी के पास बलहरा, जुरुज़ और ताफ़क़ से अधिक लश्कर है। कहा जाता है कि जब वह युद्ध के निमित्त निकलता है तो लगभग पचास हज़ार हाथियों को लेकर निकलता है। और जब कभी युद्ध के लिये प्रस्थान करता है तब प्राय: शरद्-ऋतु में करता है क्योंकि हाथी प्यास के कष्ट को सहन नहीं कर सकते। इस कारण शरद्ऋतु में ही युद्ध के निमित्त निकलने में सुभीता पड़ता है। यह भी कहा जाता है कि उसके लश्कर के खेमों की संख्या दस हज़ार से लेकर पंद्रह हज़ार तक होतीहै।

बतलाया है परंतु सुलैमान से लगभग एक हज़ार वर्ष पहले (मैगस्थ-नीज़ के कथनानुसार) सारे भारत में चोरी का सर्वथा अभाव था।

भारतीय शिल्पकला तथा अन्य वस्तुएँ

इसके राज्य में एक ऐसा कपड़ा होता है जैसा किसी अन्य स्थान में होता ही नहीं। वह कपड़ा छोटी अंगूठी के घेरे में से गुज़ारा जा सकता है। वह रूई ही से बनाया जाता है परंतु बहुत सुंदर बनाया जाता है। मैंने अपनी आँखों से कुछ कपड़ों को देखा है[1]। इस देश में कौड़ियों का चलन है। इन्हें इस देश का मूल-धन जानना चाहिए। सोना, चाँदी और ऊद (عود)(सुगंधित लकड़ी) भी इस देश में होता है। पश्म के वस्त्र भी होते हैं उनसे जीन तथा घरेलू सामान बनाए जाते हैं।

रोहमी राज्य में गेंडा

इस राज्य में गेंडा नाम का एक प्रसिद्ध जानवर होता है। उसके माथे में सामने ही केवल एक सींग होता है। उसके सींग में मनुष्य की सूरत का तथा अन्य सांसारिक वस्तुओं का चिह्न होता है। एक ख़याल यह भी है कि सारा सींग काला होता है परंतु सूरत बीचों बीच में सफ़ेद रंग की होती है। गेंडा डील डौल में हाथी से छोटा, काले रंग का, भैंस के समान होता है। वह इतना शक्तिशाली होता है कि कोई अन्य पशु उसके समान शक्तिमान् नहीं

(१) कपड़े की सुंदरता के वर्णन से यह नतीजा निकलता है कि रोहमी राज्य भारत के पूर्वी खंड में था।

होता । उसके खुर चिरुआ नहीं होते। पौली से लेकर कंधे तक सारा एक ही भाग होता है अर्थात् बीच में कोई भी जोड़ नहीं होता। हाथी उसके भय से भाग जाता है। ऊँट तथा बैल की आवाज़ के समान उसकी गरज होती है। उसका माँस निषिद्ध नहीं है और निस्संदेह हमने उसका मांस खाया भी है। इस राज्य के जंगलों में गेंडे बहुत होते हैं। इसके सिवा भारत के अन्य भागों में भी बहुत से हैं। उनका सींग बहुत ही बढ़िया होता है। बहुत से सींगों में पुरुष, मोर, मछली तथा और कई सूरतें बनी होती हैं[1]। चीन के लोग इससे पटके या कमरबंद को सजाते हैं। ऐसे सुसज्जित कमरबंद का मूल्य चीन देश में दो हज़ार तथा तीन हज़ार, बल्कि सौंदर्य्य के लिहाज़ से और अधिक, अशरफियों तक पहुँच जाता है। ये सब चीजें रोहमी राज्य में कौड़ियों के साथ बेची और खरीदी जाती हैं जो इस देश का मूल-धन है।

भारत के कुछ छोटे छोटे राज्य

रोहमी राज्य के बाद काशवियन राज्य है। यह समुद्र से दूर है। यहाँ के निवासी गोरे रंग के हैं और उनके कान छिदे हुए हैं। उनके यहाँ ऊँट होते हैं। सारा देश रेगिस्तानी और पहाड़ी है। काशवियन् के बाद समुद्र तट पर कैरंज

---

(१) परिशिष्ट—अंक १८ में 'गेंडे' के बारे में देखो।

नाम का एक छोटा सा राज्य है। यह देश दीन है परंतु इसमें समुद्र के जुआर-भाटा से बहुत सा अंबर आ जाता है। इस देश में हाथीदाँत और काली मिरचें भी होती हैं। परंतु काली मिरचें थोड़ी ही होती हैं अतः लोग काली मिरचों को हरी ही खा जाते हैं।

इन राज्यों के सिवा और बहुत से छोटे मोटे राज्य हैं, उनकी संख्या केवल शुद्ध पवित्र और सर्वश्रेष्ठ ईश्वर ही जानता है, उन्हींमें से एक राज्य मवजह के नाम से विख्यात है। वहाँ के निवासी गोरे रंग के होते हैं और उनका पहिनाव चीनियों के समान होता है। वहाँ कस्तूरी भी बहुतायत से होती है। वहाँ के पहाड़ सफ़ेद रंग के हैं और उनसे लंबे कहीं और नहीं हैं। वहाँ के लोग आस पास के राजाओं के साथ युद्ध करते रहते हैं, और कस्तूरी जो वहाँ होती है बहुत ही बढ़िया होती है। मवजह से परे माबद नाम के राजा हैं। यहाँ मवजह की अपेक्षा नगर बहुत हैं और यहाँ के निवासी सौंदर्य्य के विचार से भी मवजहवालों से बढ़ चढ़कर हैं, परंतु चीनियों से बहुत मिलते जुलते भी हैं। इनपर राज्य करनेवाले हाकिम चीनियों के हाकिमों के समान विशेष या नपुंसक[1] नौकर हैं। यहाँ का राज्य चीन से बहुत कुछ मिला

(१) यहाँ पर अरबी में जो शब्द है उसका अर्थ 'विशेष' या 'बधिया' दोनों हो सकता है। इस विषय में कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार मुसलमानों के अभ्युदय काल में राजमहल में पुंसत्व

जुला है। यहां के लोग चीन के राजा से संधि रखते हैं पर चीन के राजा की आज्ञाओं की ओर अधिक ध्यान नहीं देते।

चीन को भारत का भय

माबद राज्य से हर साल दूत चीन के सम्राट् के पास भेंट लेकर जाते हैं और चीन के सम्राट् की ओर से दूत माबद के यहाँ भेंट लाते हैं। चीन का देश बड़ा लंबा चौड़ा है अत: जब माबद के दूत चीन देश में प्रवेश करते हैं तो उनसे बहुत सावधान रहा जाता है, इस भय से कि कहीं ऐसा न हो कि वे लोग चीन में अधिकार जमा लेवें क्योंकि उन लोगों की संख्या बहुत ज़्यादा है परंतु भली भाँति जान लेना चाहिए कि माबद और चीन देश के बीच में बहुत से पहाड़ ही पहाड़ और कठिन से कठिन पहाड़ी घाटियाँ हैं। अत: इसपर भी चीन भयभीत रहता है।

चीन के प्रधान नगरों की विशेषताएँ

लोगों का कथन है कि चीन देश में बड़े बड़े प्रधान नगरों की संख्या दो सौ से भी अधिक है। प्रत्येक प्रधान नगर में एक हाकिम तथा एक खास अधिकारी होता है। उस प्रधान नगर की अधीनता में बहुत से छोटे छोटे नगर होते हैं। खानफू

रहित दास रखे जाते थे, संभव है उसी प्रकार की प्रथा चीन में भी रही हो और ये लोग सम्राट् के कृपापात्र बनकर बाद को विशेष पद के भागी बनते रहे हों।

एक प्रधान नगर है। वहाँ जहाज़ लंगर डालते हैं। उसके अधीन बीस छोटे छोटे नगर हैं[1]। चीन देश में वास्तविक रूप से प्रधान नगर वह कहा जाता है जहाँ कहीं तुरहियाँ रक्खी जाती हैं। तुरुही एक लंबा सा बाजा होता है जिसमें फूँक मारी जाती है। यह इतना मोटा होता है कि पूरे दोनों हाथों से पकड़ा जाता है। बाहर की ओर चीनी मिट्टी से रँगा होता है। इसकी लंबाई तीन या चार हाथ की होती है। मुँह का सिरा इतना पतला होता है कि मनुष्य के मुँह में आ जाता है। इसकी आवाज़ लगभग एक मील तक पहुँचती है।

प्रत्येक प्रधान नगर में चार फाटक होते हैं। प्रत्येक फाटक के ऊपर पाँच तुरहियाँ होती हैं। ये रात और दिन के नियत समयों में बजाई जाती हैं। इनके सिवा प्रत्येक प्रधान नगर में दस ढोल भी होते हैं जो कि तुरहियों के साथ बजाए जाते हैं। इन सब के बजाए जाने का कारण यह है कि इससे राजा की ओर प्रजा की भक्ति समझी जाय और साथ ही साथ लोगों को रात तथा दिन में समय का ठीक ठीक पता लगा करे[2]। समयों के जानने में चीनी लोग चिह्नों तथा बोझों

---

(१) प्रधान नगर की अधीनता में छोटे मोटे जो नगर होते थे उनके निमित्त प्रधान नगर को उनकी राजधानी समझना चाहिए और प्रधान नगर तथा अधीन नगरों से संयुक्त हुए सारे भाग को एक प्रांत के तुल्य जानना चाहिए।

(२) देखो नागरीप्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण भाग १ पृ० २३६

(वजनों) से काम लेते हैं अथवा उनकी घड़ियाँ ऐसी होती हैं जिनमें चिह्न होते हैं और वे बोझ से चलती हैं[1]।

चीनियों के सिक्के

चीनियों में पैसों से लेनदेन होता है। चीनियों के ख़जाने बादशाहों के ख़जानों के समान हैं। इनके सिवा किसी अन्य बादशाह के यहाँ पैसों का चलन नहीं है। यह देश का मूल-धन है। यद्यपि यहाँ सोने, चाँदी, मोती, दीवाज[2] और रेशम की कुछ कमी नहीं है तथापि पैसों को ही पूँजी और मूल-धन जानते हैं और यहाँ पैसों का ही चलन है।

चीन में अन्य वस्तुएँ

चीन देश में हाथी-दाँत, लोबान[3], ताँबे के डले और कछुए

---

(१) इस अवसर पर यह नतीजा निकलता है कि जिन बातों के आधार पर घड़ी का आविष्कार हुआ है उसके प्रारंभिक नियमों से चीन निवासी केवल परिचित ही नहीं थे बल्कि उन नियमों से काम भी लेते थे। सुलैमान से लगभग पाँच सौ वर्ष बाद अर्थात् तेरहवीं शताब्दी में पेकिन का हाल लिखते हुए मार्को पोलो कहता है कि नगर के बीच में एक घंटाघर है। उसमें पानी का घड़ियाल रहता है। जब घंटा हो चुकता है तब एक मनुष्य घंटा बजा देता है और एक तख्ते पर घंटे की संख्या लिखकर बाहर लटका देता है।

(२) दीवाज (دیباج) एक बढ़िया रेशमी वस्त्र होता है। इसको ही दीवाह या दीवा (دیباه یا دیبا) भी कहा जाता है।

(३) सुगंध फैलाने तथा दुर्गंध दूर करने के निमित्त लोबान

की पीठ की हड्डियाँ अर्थात् कछुए की पीठें[1] बाहर से आती हैं।' गेंडे का सींग भी जिसका मैंने ऊपर वर्णन किया है और जिससे वे पटके या कमरबंद सजाते हैं बाहर ही से आता है। पशु यहाँ बहुत होते हैं। अरबी घोड़े तो नहीं होते परंतु अन्य जाति के घोड़े हैं। गदहे और ऊँट भी बहुत हैं। परंतु यहाँ के ऊँट के दो कोहान होते हैं। इनके सिवा यहाँ एक विशेष प्रकार की बढ़िया मिट्टी होती है जिससे शीशे के से पतले प्याले बनाए जाते हैं यहाँ तक कि उन प्यालों में पानी बाहर से साफ़ झलकता दिखाई पड़ता है यद्यपि वे मिट्टी के होते हैं[2]।

चीन में बाहरी माल की बिक्री का दस्तूर

जब सौदागर लोग समुद्री मार्ग से चीन में प्रवेश करते

एक बड़ी उपयोगी वस्तु है। आग पर रखते ही कपूर के समान उड़ती है और सुगंध फैला देती है। यह एक वृक्ष की गोंद है। जावा द्वीप और अरब के यमन, व हज़रमूत व उम्मान प्रांतों में यह बहुत होती है। परंतु यमन व हज़रमूत की सूखी लोबान में सुगंधि नहीं होती। यमन में जो लोबान होती है उसको 'कंदुर दरियाई' कहते हैं अथवा केवल 'कंदुर' भी कहते हैं।

(१) जानना चाहिए कि जिस प्रकार संस्कृत में 'राहोः शिरः' बोलना ठीक है, उसी प्रकार का वाक्य अरबी का भी है जिसका अर्थ 'कछुए' की पीठ की हड्डियाँ निकलता है।

(२) चीनी मिट्टी के विषय में अधिक जानने के लिये देखो परिशिष्ट— १६, 'चीनी मिट्टी'।

हैं तब चीनी लोग उनके माल को लेकर घरों में रख देते हैं। फिर वे लोग माल को कुछ महीनों तक रोके रहते हैं यहां तक कि सब से पिछला समुद्री सौदागर भी वहाँ पहुँच जाय। इस समय वे दस में से तीन भाग (अर्थात् तीस सैकड़े की दर से) माल ले लेते हैं और बाकी सौदागरों को दे देते हैं। यदि सम्राट् को उसमें से लेने की कुछ आवश्यकता होती है तो वह उस वस्तु के लियें अधिक से अधिक मूल्य नक़द देता है और इस मामले में अन्याय बिलकुल ही नहीं किया जाता। बादशाह कपूर लेते हैं और एक मन कपूर का दाम पचास फ़कूजा देते हैं। यहाँ का एक फ़कूजा एक हज़ार पैसों के बराबर होता है। यदि बादशाह कपूर नहीं लेता तो अन्य लोग कपूर को आधे मूल्य पर ही लेते हैं।

चीनियों के मृतक

चीन में जब कोई मर जाता है तो उसको उस समय तक नहीं गाड़ते जब तक कि अगले वर्ष में वह दिन नहीं आ जाता जिस दिन कि वह मरा था। ये लोग मृतक को एक टिकटी में रखकर घर के एक कोने में रख छोड़ते हैं। मृतक पर चूना छोड़ देते हैं, तो उसका पानी सूख जाता है और वह ठीक तौर से रहता है। बादशाहों को मुसब्बर (एलुआ[1]) और

(१) मुसब्बर (مصبر) या एलुआ—काले रंग की एक कड़ुवी वस्तु होती है। यह कई रोगों के निमित्त बहुत उपयोगी होती है।

कपूर में रखते हैं। यहाँ के लोग मृतक के निमित्त पूरे तीन साल तक रोते हैं। जो कोई नहीं रोता उसकी ख़बर डंडे से ली जाती है। स्त्री और पुरुष किसीकी भी इस मामले में रियायत नहीं की जाती। जो कोई नहीं रोता लोग उसे (उपालंभ देकर) कहते हैं कि मृतक की मृत्यु ने उसे (न रोनेवाले को) निस्संदेह दुःख नहीं पहुँचाया है अर्थात् न रोने वाले को अपने ही मृतक की मृत्यु से दुःख नहीं पहुँचा है।

चीनी मृतकों को गाड़ते हैं

जिस प्रकार अरब निवासी मृतकों को क़बर के कोने के भाग में गाड़ते हैं उसी तरह ये लोग भी करते हैं[१]। ये लोग ख़याल करते हैं कि मृतक सचमुच खाया पीया भी करता है। इस कारण मृतक के लिये भोजन बंद नहीं किया करते। अतः रात्रि में मृतक के समीप भोजन अवश्यमेव रख दिया करते हैं। जब भोर होता है और भोजन बाक़ी नहीं पाते तब लोग कहते हैं कि वास्तव में मृतक ने भोजन पाया है। जब तक मृतक इनके घरों में रहता है रोना और भोजन निरंतर, जारी रहता है। इस प्रकार मृतकों के कारण लोग बड़े कंगाल हो जाते हैं, यहाँ तक कि उनके पास एक पैसा भी नहीं बाक़ी रह जाता, और लोग अपना सर्वस्व मृतक के हेतु ख़र्च कर बैठते हैं। अब से पहले इनमें यह दस्तूर था कि

(१) चीन के साधारण मृतक तथा प्राचीन मृतक बादशाहों के विषय में देखो परिशिष्ट—२०, 'चीन के मृतक'।

राजा अथवा राजकुटुंबी को ये लोग बड़े अमूल्य वस्त्र धारण कराकर गाड़ते थे और साथ में ही जड़ाऊ पटके रख देते थे। उनका मूल्य बहुत ज़्यादा होता था। परंतु अब ऐसा नहीं किया जाता क्योंकि कुछ मृतकों की कबरों को खोदकर उनके साथ की चीज़ें निकाल ली गई हैं।

चीनियों में लिखना पढ़ना और अधिकारी वर्ग

चीन के अमीर ग़रीब तथा छोटे, बड़े सभी लिखना पढ़ना जानते हैं[1]। बादशाह तथा हाकिम का नाम उसके बड़प्पन तथा उसके अधीन नगरों की बड़ाई के अनुसार हुआ करता है। प्रत्येक छोटे नगर के अधिकारी को तौसंज कहते हैं। तौसंज का अर्थ है कि जो नगर का प्रबंध रखे। जो नगर ख़ानफू के समान हो उसके प्रबंधकर्ता को दीफ़ू कहते हैं। विशेष अधिकारी को तौक़ाम कहा जाता है। विशेष अधिकारी का चुनाव सर्व साधारण ही में से होता है। प्रधान न्यायाधीश लक़शी मामकवन कहा जाता है। इनके अतिरिक्त अन्य अधिकारियों के भी नाम हैं जिनको हम ठीक ठीक बतला नहीं सकते।

---

(१) प्राचीन काल में चीन में विद्या की अच्छी चर्चा थी। कई बहुत पुराने हस्तलिखित ग्रंथ चीन में मिले हैं। चीनी लोग शिल्प-कला में भी अनोखे तथा अद्वितीय थे। चीनी मिट्टी के पात्रों के बनाने तथा रेशम के कार्य्य में उनके साथ कोई मुक़ाबिला कर ही नहीं सकता था, दस्ती तस्वीरों के खींचने में भी उनके साथ कोई बराबरी नहीं कर सकता था।

चीनी हाकिम का दरबार

जब तक कि कोई मनुष्य ४० की आयु नहीं प्राप्त कर लेता तब तक वह अधिकारी नहीं बनाया जाता। इस आयु के पाने पर समझा जाता है कि इसने अनुभव प्राप्त कर लिया है। छोटे छोटे हाकिमों में से जब कोई दरबार में बैठता है तब वह अपने नगर में कुरसी पर बैठता है और एक विशाल भवन में बैठता है। उसके सामने एक और कुरसी होती है। फिर उसके सामने लोगों के आवेदनपत्र रखे जाते हैं जिनमें लोगों के लिये आज्ञाएँ होती हैं। हाकिम के पास ही सामने या पीछे की ओर एक मनुष्य खड़ा होता है। उसको लीखु कहते हैं। यदि हाकिम आज्ञा देने में कहीं ठोकर खाता है अथवा कुछ गलती कर बैठता है तो वह उसे ठीक कर देता है। हाकिम अपनी ओर से किसी काग़ज़ पर जो कुछ लिख कर देता है वही ठीक माना जाता है। उसकी जबानी बातों को लोग पर्याप्त नहीं मानते हैं।

जब कोई मनुष्य हाकिम के सामने कुछ निवेदन लिख-कर करना चाहता है तो उस निवेदनपत्र को हाकिम के पास पहुँचने से पहले दरवाजे पर खड़ा होनेवाला मनुष्य देख लेता है। यदि प्रार्थनापत्र में कोई दोष होता है तो वह उसे लौटा देता है। जो पत्र हाकिम के लिये लिखे जाते हैं उनको केवल वही लेखक लिखा करता है जो इस कार्य्य में निपुण

होता है। वह लेखक पत्र में लिख देता है कि इस पत्र को अमुक के पुत्र अमुक ने लिखा। यदि उसमें, कोई त्रुटि पाई जाती है तो उसको बुरा भला कहा जाता है और डंडे से उसकी ख़बर ली जाती है। हाकिम जब दरबार करता है ता अवश्यमेव खा पीकर बैठता है, जिससे ऐसा न हो कि (भूख के मारे) कोई गलती कर बैठे। जिस नगर का जो हाकिम होता है उसी नगर के कोष से उसको ख़र्च मिलता है।

चीन सम्राट् के विचार

चीन का सब से बड़ा हाकिम अर्थात् सम्राट् प्रत्येक मास में केवल एक ही दिन सर्वसाधारण के सामने बाहर निकलता है। सम्राट् का कथन है कि यदि लोग मुझे देख लेवेंगे तो मुझे तुच्छ समझेंगे और राज्य बिना रोब-दाब तथा शक्ति के कायम नहीं रहा करते। सर्वसाधारण में यह बुद्धि नहीं होती कि वे न्याय को यथोचित समझ सकें, इस कारण आवश्यकता है कि शक्ति का प्रयोग किया जाय जिससे लोगों की दृष्टि में हम बड़े बने रहें अर्थात् हमारा प्रताप रहे[1]।

---

(१) जापान के महाराजा भी पहले सर्वसाधारण के संमुख नहीं निकला करते थे, बहुधा परदे ही में रहा करते थे, परंतु भूतपूर्व महाराज ने इस रीति को उठा दिया।

चीन में कर

चीन में भूमि का कर नहीं लिया जाता, बल्कि मनुष्य की स्थिति का विचार रखते हुए प्रत्येक पुरुष से एक प्रकार का कर[1] अवश्य लिया जाता है। यदि कोई अरब देश का हो अथवा चीन के सिवा किसी अन्य देश का हो तो उसकी आर्थिक अवस्था के लिहाज़ से कर लिया जाता है। यदि कोई मनुष्य आवश्यक वस्तु को अधिक मूल्य पर बेचता है तो राजा उसके यहां से खाद्य पदार्थ निकलवा कर बाज़ार भाव से बहुत सस्ते दाम पर बेच देता है। इस प्रकार चीन में मँहगी नहीं रहा करती[2]। पुरुषों से जो कर लिया जाता है वह राज-कोष में जमा किया जाता है। ख़ानफू नगर चीन में यद्यपि सर्वश्रेष्ठ नगर नहीं है तथापि वहां के राज-कोष में जो रकम प्रति दिन जमा होती है मेरा अनुमान है कि वह पचास हज़ार अशरफियों की होती है।

चीन सम्राट् की आय

चीन सम्राट् के निमित्त जो खास संपत्ति होती है वह नमक

(१) पुरानी राजस्थानी 'मूंडकी' अर्थात् प्रति मुंड कर—देखो पृ० ७२ अंतिम पंक्ति।

(२) भारत को महँगी के प्रकोप से बचाने के लिये अपने समय में सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने यथेष्ट रूप से प्रशंसनीय उद्योग किया था। इस सुलतान ने सन् १२९६ से १३१६ ई० तक राज किया था।

की खानों के करों की होती है और उस पत्ती के कर की होती है जिसको चीनी लोग गरम पानी के साथ पीते हैं। यह पत्ती यहाँ प्रत्येक नगर में बहुत ज्यादा बेची जाती है। इसको यहाँ साख (अर्थात् चाय) कहते हैं। इस (चाय) के वृक्ष में खजूर से भी अधिक पत्ते होते हैं। इसका स्वाद बहुत कम अच्छा होता है क्योंकि इसमें कड़ुआपन पाया जाता है। पानी पहले खूब गरम किया जाता है, बाद को पत्तियों पर उड़ेल दिया जाता है। चीनियों के लिये यह बड़ी गुणकारी है। अतः प्रत्येक पुरुष पर कर से और नमक तथा इस पत्ती (चाय) के कर से जो कुछ आय होती है सब की सब राज-कोष में रखी जाती है।

चीन में दुखियों के लिये घंटी

प्रत्येक नगर में दरा (ا,د) नामी एक वस्तु होती है जिसको घंटी कहते हैं। वह घंटी नगर के हाकिम के सर के ऊपर टँगी रहती है। उसमें एक लंबी डोर बँधी होती है जो कि सर्वसाधारण के निमित्त बड़े रास्तों पर से अंत तक गुजरती है। यह डोर एक फरख़स अर्थात् तीन मील के लगभग लंबी होती है, क्योंकि अंतिम स्थान और हाकिम के बीच में लगभग इतना ही फ़ासला हुआ करता है। उस डोर को यदि तनिक भी हिलाया जाता है तो घंटी हिलने (बजने) लगती है। जिस पर कोई अन्याय होता है वह इस डोर को हिलाता है।

फिर ऐसा करने से घंटी हाकिम के सिर पर बजती है। इसके बाद उस पीड़ित को भीतर आने की आज्ञा दी जाती है, वह स्वयमेव अपना हाल बयान करता है और अपने ऊपर हुए अत्याचार को प्रकट करता है। चीन के सब नगरों में यही हाल है[1]।

चीन राज्य में यात्रा में सरकारी परवाने तथा संपत्ति

जो मनुष्य यात्रार्थ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना चाहता है उसको दो परवाने राहदारी के लेने पड़ते हैं। उनमें से वह एक तो हाकिम से लेता है और दूसरा विशेष अधिकारी से। हाकिम का परवाना मार्ग के निमित्त होता है। उसमें यात्री का नाम, उसके साथी का नाम, उसकी तथा उसके साथी की आयु तथा कुटुंबों का परिचय होता है। प्रत्येक मनुष्य को चाहे वह चीन ही का हो, चाहे अरब देश का, चाहे किसी स्थान का हो, यह आवश्यक है कि वह अपने विषय में उन सब बातों को बतलावे जिनको वह जानता है।

विशेष अधिकारी के परवाने में यह लिखा होता है कि यात्री के पास कितना धन है और कितना माल है। इनकी आवश्यकता इस कारण से पड़ती है कि सीमांत स्थानों में ये परवाने देखे जाते हैं। अस्तु, सीमांत स्थानों में जब कोई पहुँचता है

(१) इस प्रकार के 'न्यायघंटा' का उल्लेख भारतवर्ष के कई राजाओं के वर्णनों में मिलता है।

तो वहाँ लिखा जाता है कि अमुक का पुत्र अमुक हमारे यहाँ अमुक दिन आया। ऐसा होने से कोई मनुष्य दूसरे की संपत्ति नहीं ले सकता और न किसी की संपत्ति गुम ही हो सकती है। यदि किसी का कुछ माल चला जाता है अथवा कोई यात्री मर जाता है तो पता लग जाता है कि क्योंकर माल गया। फिर खोया हुआ माल मिल जाता है तो उसको अथवा यात्री के मरने पर उसके वारिसों को वापस दिया जाता है।

चीन में न्यायपद्धति

चीनी लोग अपने काम काज तथा कचहरी में न्याय से काम लेते हैं। जब किसी मनुष्य का किसी के साथ कर्ज-संबंधी कुछ मामला होता है तो मुद्दई और मुद्दाअलह दोनों एक एक काग़ज़ पृथक् पृथक् लिखते हैं और प्रत्येक अपना दावा तथा जवाब-दावा उसमें बयान करता है। मुद्दाअलह अपने जवाब-दावे में हस्ताक्षर के सिवा अपने अंगूठे के पासवाली अँगुली तथा बीच की अँगुली से भी निशान कर देता है। फिर दोनों काग़ज़ हाकिम के संमुख एक साथ पेश किए जाते हैं। हाकिम इन दोनों की जाँच परताल करके हुकुम लिखता है। फिर मुद्दई और मुद्दाअलह दोनों के काग़ज़ पृथक् पृथक् करके वापस दे देता है।

मुद्दाअलह को काग़ज़ पहले दिया जाता है कि वह दावे

को स्वीकार करे। परंतु मुद्दाअलह यदि समझता है कि उस पर मुद्दई का कुछ नहीं है तो मुद्दई के दावे से इनकार करता है। उस समय उससे कहा जाता है कि अपना काग़ज़ इस संबंध में पेश करो[१]। जब मुद्दई और मुद्दाअलह दोनों को अपने अपने काग़ज़ दे दिए जाते हैं तब इनकारी होने की अवस्था में मुद्दाअलह से कहा जाता है कि अपनी सफ़ाई पेश करो नहीं तो यदि मामला ऐसा ही है जैसा कि मुद्दई का बयान है तो तुम्हारी पीठ पर बीस डंडे बरसाए जावेंगे और तुम्हें बीस हज़ार फ़कूज देने पड़ेंगे। ये बीस हज़ार फ़कूज فكوج दो हज़ार अशरफ़ियों के बराबर ठहरते हैं और बीस डंडों से मृत्यु ही हो जाती है। अतः चीन में कोई भी ऐसा नहीं जो अपनी जान तथा संपत्ति के नाश का भय न करके अपने आप को इस प्रकार के ख़तरे में डाले अथवा ऐसी सज़ा को सह सके। निदान चीनी न्याय बहुत ठीक ठीक करते हैं और किसी का हक़ बिलकुल नहीं मारा जाता। इनमें न तो किसी गवाह ही की आवश्यकता समझी जाती और न किसी को शपथ ही खिलाई जाती है।

जब कोई मनुष्य दिवालिया हो जाता है और महाजनों का धन नाश कर बैठता है तब महाजन लोग उसको जेलखाने में भिजवा देते हैं। वहाँ उसका बयान लिया जाता है। एक मास के बाद बादशाह उसको हवालात से बाहर निकाल देता है

---

(१) अरबी में इस प्रकरण का भाव यथेष्ट रूप से स्पष्ट नहीं है।

और इस बात की डुगडुगियाँ पिटवा देता है कि अमुक मनुष्य का पुत्र अमुक नाम का अमुक नाम के मनुष्य की संपत्ति को नष्ट कर बैठा है। किसी के पास उसकी धरोहर हो या किसी प्रकार की संपत्ति हो, अथवा कोई भी ऐसी वस्तु हो जिससे कि कर्ज अदा किया जा सके तो उसको चाहिए कि वह एक मास के भीतर जाहिर कर दे। दिवालिये के ऊपर डंडे भी बरसाए जाते हैं। उसको जेल में खाना पीना दिया जाता है। यदि दिवालिये की संपत्ति का पता चल जाता है तो चाहे वह उस धन का इकरार करे चाहे न करे दोनों दशाओं में वह अवश्यमेव पीटा जाता है। ऐसी अवस्था में यह समझा जाता है कि दिवालिये का यह कार्य लोगों के हक हड़प करने ही की नीयत से था। उसके लिये यह उचित न था कि वह अपने लिये जाति के साथ इस प्रकार का धोखा करे। यदि दिवालिये का कार्य धोखेबाजी पर निर्भर नहीं होता और वह हाकिम की दृष्टि में सच्चा साबित हो जाता है कि उसके पास करजदारों को देने के निमित्त कुछ भी नहीं है तो करजदारों को (उनका लेना) बग़बून के राज-कोष से दिया जाता है। बग़बून यहाँ सम्राट् को कहते हैं। कारण यह कि 'बग़बून' का अर्थ स्वर्ग का पुत्र है। पर हमलोग यहाँ के सम्राट् को बग़बून कहते हैं[1]।

---

(१)—बग़बून (بغبون) संभव है कि फ़ग़फ़ूर हो जो चीन के बादशाहों की उपाधि है। कुशनवंशी हिंदुस्तान के राजाओं की, जो चीनी या शक थे, उपाधि 'देवपुत्र' मिलती है। यही उपाधि पुराने खुतन या पूर्वी तुर्किस्तान से डाक्टर स्टाइन को मिले हुए राजकीय लेखों में पाई जाती है।

बाद को जनता में घोषणा करा दी जाती है कि जो मनुष्य इसके साथ लेन-देन करेगा वह मृत्यु के घाट उतारा जायगा। इस प्रकार ऐसी संभावना नहीं हुआ करती कि किसी का धन जाता रहे। यदि यह पता लगता है कि सचमुच अमुक मनुष्य के पास दिवालिये का माल है किंतु उसने इकरार नहीं किया तो ऐसी अवस्था में वह डंडों से ही इतना पीटा जाता है कि मृत्यु की शरण ले लेता है। दिवालिये को इस समय किसी प्रकार का शारीरिक दंड नहीं दिया जाता। केवल लेन-देन करने से सर्वदा के लिये रोक दिया जाता है और मिला हुआ माल महाजनों में बँट जाता है।

चीन की चिकित्सा संबंधी बातें

चीन में दस हाथ लंबा एक पत्थर गड़ा रहता है। उसमें चाँदी के अक्षरों में औषधियों का वर्णन हुआ करता है कि अमुक रोग के निमित्त अमुक औषध उत्तम है। यदि कोई मनुष्य इतना ग़रीब हो कि औषध का दाम न दे सकता हो तो राज्यकोष से उसकी दवा का मूल्य अदा कर दिया जाता है।

चीन में राज्यकोष से बूढ़ों की वृत्ति

चीन में भूमि का कर नहीं लिया जाता बल्कि प्रत्येक मनुष्य से उसकी संपत्ति तथा धन के अनुसार एक प्रकार का कर अवश्य वसूल किया जाता है। जब किसी के यहाँ कोई

पुत्र उत्पन्न होता है तो सम्राट् के यहाँ उसका नाम लिखा जाता है, फिर अठारह वर्ष की अवस्था हो जाने पर उससे कर लिया जाने लगता है। अस्सी वर्ष की आयु होने पर उससे कर लेना बंद कर दिया जाता है और राज्य-कोष से उसकी वृत्ति बँध जाती है, क्योंकि चीन के बादशाहों का कथन है कि जब जवानी की अवस्था में हमने उससे धन लिया है तब अब बुढ़ापे में उसे क्यों न दिया जावे।

चीनियों का लिखना पढ़ना तथा कुछ अन्य बातें

ग़रीबों तथा उनके बाल-बच्चों को पढ़ाने लिखाने के लिये प्रत्येक नगर में पाठशाला और अध्यापक नियत हैं। उनको राज्य-कोष से वेतन दिया जाता है। यहाँ की स्त्रियाँ प्रायः सर खोले रहती हैं, केवल पुरुषों की उपस्थिति में सर ढाँक लेती हैं।

चीन में टायू नामी एक बस्ती है। वास्तव में यह एक विशाल भवन है और यह एक पहाड़ पर है। चीन की प्रत्येक ऐसी बस्ती को टायू ही कहते हैं। चीनी लोग सुंदर और अच्छे डील डौल के होते हैं। रंग उनका गोरा होता है। वे शराब बिलकुल नहीं पीते। उनके बाल संसार की सारी जातियों के बालों से अधिक काले होते हैं। स्त्रियाँ बालों को मोड़े रहा करती हैं।

भारत में गरम दहकते लोहे से दोषी की परख[1]

भारतवर्ष में जब कोई मनुष्य किसी दूसरे पर ऐसा दोष आरोपण करता है जिसमें कि वह मृत्यु का अधिकारी हो तब ऐसे समय में उस दोषी को अग्नि उठाने के लिये कहा जाता है। वह यदि इस बात को स्वीकार कर लेता है तो फिर लोहे का एक टुकड़ा खूब ही गर्म किया जाता है यहाँ तक कि उससे अग्नि प्रकट होने लगती है। इसके पश्चात् उसके खुले हाथ पर किसी वृक्ष की सात पत्तियाँ रक्खी जाती हैं। इन पत्तियों के ऊपर दहकता हुआ लोहे का गर्म टुकड़ा रख दिया जाता है। वह इस टुकड़े को लेकर कुछ देर तक टहलता है, बाद को फेंक देता है, फिर चमड़े के एक थैले में उसका हाथ डाल दिया जाता है और उस पर सम्राट् की मुहर लगा दी जाती है। तीन दिन बीत जाने के पश्चात् जब वह इस बात का परिचय देता है कि उसे कुछ कष्ट नहीं पहुँचा तब उसका हाथ खोल दिया जाता है। यदि उसके हाथ को कुछ कष्ट नहीं पहुँचा हो तो वह छोड़ दिया जाता है और मृत्यु के घाट नहीं उतारा जाता, बल्कि जुरमाने के तौर पर एक मन सोना दोष आरोपण करनेवाले को बादशाह के कोष में दाखिल करना पड़ता है।

---

(१)—दिव्य, देखो याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, प्रकरण ७ श्लोक १०२—२।

भारत में खौलते पानी से दोषी की परीक्षा

भारतवर्ष में कभी कभी ऐसा भी होता है कि लोहे या ताँबे के बरतन में पानी ख़ूब खौलाया जाता है, यहाँ तक कि कोई उसको छू भी नहीं सकता। उस पानी में फिर एक लोहे का छल्ला डाला जाता है। फिर दोषी से कहा जाता है कि वह हाथ डालकर उस छल्ले को पानी से निकाले। मैंने स्वयमेव अपनी आँखों से देखा कि एक मनुष्य ने हाथ डाल-कर छल्ले को निकाला किंतु उसको कुछ हानि न पहुँची। ऐसी दशा में भी दोष आरोपण करनेवाले को एक मन सोना देना पड़ता है।

लंका में शाही जनाज़े की प्रथा

लंका में जब राजा मरता है तब उसको एक गाड़ी में चित लिटाया जाता है। वह गाड़ी भूमि से बहुत ज़्यादा ऊँची नहीं हुआ करती। राजा का सिर पीछे की ओर होता है और सिर के बाल ज़मीन में छू जाते हैं। इस गाड़ी के पीछे एक स्त्री होती है। वह राजा के सिर पर मिट्टी डालती और ज़ोर से कहती जाती है—

"लोगो, देखो यह तुम्हारा राजा है। कल यह राजा था। इसका आदेश माना जाता था। आज संसार को त्याग बैठा है। अब इसकी जो दशा है, उसको तुम लोग देख रहे हो। मृत्यु ने उसकी आत्मा को

निकाल लिया है, सो तुम लोगों को चाहिए कि जीवन का कुछ भरोसा मत करो।"

इस प्रकार का हाल तीन दिनों तक रहता है। बाद को चंदन कपूर और केसर एकत्र किए जाते हैं और वह जलाया जाता है। उसकी राख हवा में उड़ा दी जाती है। भारत के तो सभी लोग अपने मृतकों को जलाते हैं। लंका का टापू सब से अंतिम टापू है और यह भारत देश में है। अनेक बार ऐसा भी हुआ है कि जब राजा को जलाया गया तो रानियाँ भी साथ ही साथ जल मरीं, परंतु ऐसा काम रानियों की अपनी इच्छा पर निर्भर होता है[1]।

भारत के तपस्वी साधु

भारतवर्ष में ऐसे भी लोग पाए जाते हैं जो कि जंगलों तथा

---

(१) राजतरंगिणी में लिखा है कि एक रानी तो रथ में बैठी सती होने जा रही थी इतने में दूसरी उससे पहले पहुँचकर चिता पर चढ़ गई। (८।३६७)।

लार्ड विलियम बेंटिंग ने सती-प्रथा को दिसंबर सन् १८२६ ई० में कानूनन यथेष्ट रूप से बंद किया। इससे पहले भारत में सती-प्रथा बहुत जोरों के साथ बहुत काल तक रह चुकी है। किसी किसी समय में इस प्रथा को बंद करने के निमित्त बहुत कुछ उद्योग हुआ था किंतु वह सर्वथा बंद न हुई। अनेक स्थानों में प्राचीन सतियों के बहुत से स्मारक अब तक पाए जाते हैं। यद्यपि सती होना अब कानूनन मना है और सती-प्रथा निस्संदेह अब बंद ही है तथापि किसी न किसी समय भारत के किसी न किसी भाग में सती-घटना का समाचार समाचार-पत्रों में अवलोकनार्थ आ ही जाता है।

पहाड़ों में रहा करते हैं। ऐसे लोगों का मेल जोल सर्वसाधारण के साथ बहुत ही कम अथवा बिलकुल ही नहीं हुआ करता। ये लोग जंगली बनस्पति तथा फलों पर ही जीवन व्यतीत करते हैं। स्त्रियों से बचे रहने के विचार से अपनी इंद्रिय पर एक लोहे के छल्ले का इस्तेमाल रखते हैं। इनमें से कुछ लोग तो सदैव नग्न ही रहा करते हैं, कुछ सूर्य के संमुख खड़े रहते हैं और केवल चीते की खाल तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तु उनके ऊपर होती है। एक बार मैंने देखा कि एक स्थान पर एक मनुष्य सूर्य की ओर मुख किए हुए खड़ा था, उसके ऊपर एक चर्म था। सोलह वर्ष के पश्चात् जब मैं फिर लौटकर उसी स्थान पर आया तो देखता हूँ कि वह तपस्वी फिर उसी प्रकार खड़ा था जैसा कि मैंने उसे पहले देखा था। ऐसी दशा देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि सूर्य की गरमी से उसकी आँख न जाने क्यों नहीं फूटी।

भारत में अधिकार

भारतवर्ष में राजकीय अधिकार राजघराने में ही रहा करता है और किसी हालत में भी दूर नहीं होता, बल्कि एक के पश्चात् दूसरे को मिला करता है। विद्या, चिकित्सा तथा अन्य कला कौशल वालों में भी कुटुंब ही में अधिकार समझा जाता है। किसी अन्य व्यवसाय का मनुष्य अपने से भिन्न व्यवसाय में संमिलित नहीं हो सकता[1]। राजा लोग एक ही

---

(१) जन्म से जाति।

राजा के अधीन नहीं हैं बल्कि प्रत्येक राजा अपने राज्य में स्वतंत्र रूप से राज्य करता है और बलहरा सम्राट् है।

चीन के निवासी अपने बचनों के प्रेमी नहीं हैं! वे रसरंग में भाग लेते हैं परंतु भारत के लोग रसरंग को बुरा समझते हैं, उसमें बिलकुल भाग नहीं लेते और शराब भी नहीं पीते। इनका ऐसा करना कुछ धार्मिक दृष्टि से नहीं है बल्कि दूसरे विचार से है। इनका कथन है कि जो बादशाह शराब पीता है वह वास्तव में बादशाह नहीं है। आस पास में आपस में लड़ाई बखेड़े होते रहते हैं, सो वह राजा जो कि मतवाला हो भला क्योंकर राज्य का प्रबंध कर सकता है?

भारतीय राजाओं में राज्य के लिए लड़ाई नहीं होती

भारतवर्ष में एक राजा दूसरे के साथ युद्ध ठानता है तो उसका यह विचार बहुत ही कम होता है कि वह दूसरे के राज्य पर अपना अधिकार जमा लेवे। केवल मिर्चवाले (मलाबार)[1] देश की तिल[2] जाति के लोगों ने अधिकार जमाने के विचार से ऐसा किया है, नहीं तो मुझे अन्य कोई उदाहरण नहीं मिला। जब कोई राजा किसी अन्य पर विजयी होता है तो पराजित राजा के कुटुंब में से ही किसी को जीते हुए राज्य

---

(१) अबुलफ़िदा नामी मुसलमान इतिहासकार ने मलाबार को काली मिर्चों का घर बतलाया है, क्योंकि काली मिर्चें यहां बहुत होती हैं।

(२) संभव है कि 'तिळ' से अभिप्राय 'तिळोई' जाति के लोगों से हो।

का राजा बना देता है, क्योंकि उस राज्य के लोग उसीसे संतुष्ट रह सकते हैं। इस प्रकार वह विजयी राजा की अधीनता में राज्य करता है।

चीन में अधिकारियों को दंड

चीनी सम्राट् के अधीन जितने अधिकारी तथा राजा हैं उनमें से यदि कोई अत्याचार करता है तो उसको मृत्यु के घाट उतारा जाता है और उसका मांस खा लिया जाता है। चीनियों में यह भी देखा जाता है कि तलवार से मारे जाने वाले (मनुष्य) का मांस वे लोग खा लेते हैं।

विवाह का ढंग

भारत तथा चीन में लोग जब विवाह का विचार करते हैं तो लड़की और लड़के वालों के लोग परस्पर एक दूसरे के यहाँ बधाई भेजते हैं। दोबारा बधाई के बाद विवाह रचा जाता है। विवाह में ढोल और झांझ बजाये जाते हैं और शक्ति के अनुसार भेंटें दी जाती हैं।

भारत में स्त्री भगानेवाले को दंड

भारत में यदि कोई मनुष्य किसी की स्त्री भगा ले जाता है और उसके साथ उसकी इच्छा से कुकर्म करता है तो स्त्री और पुरुष दोनों को मृत्यु का दंड दिया जाता है, यदि ज़बरदस्ती (बिना स्त्री की इच्छा के) मुँह काला करता है तो केवल

पुरुष ही मृत्यु का भागी होता है, नहीं तो स्त्री की रज़ामंदी होने पर दोनों के दोनों मार दिए जाते हैं।

चीन तथा भारत में चाहे कोई मनुष्य तनिक सी चीज़ चुराए चाहे बहुत सी, प्रत्येक दशा में वह मार डाला जाता है। भारत में यदि कोई एक पैसा अथवा इससे अधिक मूल्य की वस्तु चुराता है तो उसकी सज़ा यह होती है कि एक लंबी लकड़ी का सिरा खूब तेज़ किया जाता है, फिर चोर चूतड़ के बल उसपर बैठाया जाता है यहाँ तक कि वह लकड़ी चोर के गले तक पहुँच जाती है।

आचार, गृह तथा गृहिणी विषयक बातें

चीनी लोग बालकों के साथ दुराचार करते हैं। मूर्तियों के संमान के हेतु जो अनेक कार्य करते हैं उन्हींमें इसकी भी गणना करते हैं। मकानों की दीवारें चीन में लकड़ी की होती हैं परंतु भारतवर्ष में मकान मिट्टी, चूने, ईंट और पत्थर के बनाये जाते हैं। चीन के अनेक मकान भारतीय गृहों के समान भी हैं। चीन तथा भारत में से किसी जगह के भी लोग एक ही स्त्री नहीं रखते बल्कि दोनों देशों में लोग जितनी स्त्रियाँ चाहते हैं ब्याह लेते हैं।

चीनियों के भोजन तथा पूजा-पाठ

भारतवर्ष के लोग प्रायः चावल खाते हैं[1] परंतु चीनियों

(१) सुलैमान ने जो कुछ लिखा है वह भारत के दक्षिण तथा पूर्वीय भागों की बाबत ही लिखा है। दक्षिण की ओर चावल ही ज्यादा खाते हैं। इसी प्रकार कुछ अन्य बातों को भी समझना चाहिए।

का भोजन गेहूँ और चावल दोनों है। भारतवासी गेहूँ नहीं खाते। चीन तथा भारत में से किसी भी देश में ख़तने[१] का दस्तूर नहीं है। चीन के लोग मूर्तियों के पूजक हैं, उन्हींके उपासक हैं और उन्हींके सामने मत्था टेकते हैं। इनके पास धर्म-ग्रंथ भी हैं।

दाढ़ी-मूछों का वृत्तांत

भारत के लोग अपनी दाढ़ी लंबी बढ़ाते हैं। बाज़ लोगों की दाढ़ी तो मैंने तीन हाथ तक की देखी है। मूछें रखने का दस्तूर बिलकुल नहीं है। चीनियों के दाढ़ी स्वाभाविक रूप से निकला ही नहीं करती। भारत में यह भी दस्तूर है कि जब किसी के यहाँ कोई मर जावे तो सर और दाढ़ी मुँड़ा डालते हैं।

न्याय

भारतवर्ष में जब कोई मनुष्य बंदीगृह में डाला जाता है तो पूरे सात दिनों तक लगातार न तो उसे भोजन ही दिया जाता है न पानी ही, ताकि वह ठीक ठीक पता दे देवे। चीनियों के यहाँ सरकारी न्यायाधीशों के सिवा अपने निज के लोग भी न्याय चुकाने के निमित्त नियुक्त होते हैं। इसी प्रकार भारतवर्ष में भी होते हैं।

---

(१) ख़तने का अर्थ है "मुसलमानी करना"।

कुछ फुटकर बातें

चीते और भेड़िये चीन तथा भारत दोनों देशों में पाए जाते हैं परंतु सिंह किसी देश में भी नहीं होता। मार्ग चलनेवालों को लूटनेवाले मृत्यु दंड पाते हैं। दोनों देशों के लोगों का ख्याल है कि उनके उपास्य देवों की मूर्तियाँ बोलती हैं और उन मूर्तियों के उपासक उनसे बातचीत करते हैं।

मुसलमान लोग जिस प्रकार गला काटकर पशुओं को खाने के निमित्त मारते हैं उस प्रकार भारत तथा चीन के लोग मारा नहीं करते बल्कि पशु की खोपड़ी पर चोटें लगाते हैं यहाँ तक कि वह मर जाता है।

चीन और भारत में शुद्धता-अशुद्धता

अशुद्धता[1] के पश्चात् न तो चीनी ही नहाते हैं न भारतीय ही। चीनियों में यह भी दस्तूर है कि वे लोग शौच के पश्चात् शुद्धता के निमित्त काग़ज़ का प्रयोग करते हैं। भारतवासी भोजन के पहले प्रति दिन अवश्य स्नान कर लेते हैं तब भोजन पाते हैं। स्त्रियाँ जब रजस्वला होती हैं उस समय भारतवासी उनके पास नहीं फटकते, बल्कि उनको पृथक् दूर रखते हैं परंतु चीनी लोग कुछ विचार नहीं करते, यहाँ तक कि रजस्वला होने की अवस्था में भी उनसे भोग करते हैं और उनको पृथक्

(१) यहाँ पर अशुद्धता का अभिप्राय उस अशुद्धता से है जो कि स्त्री-गमन के कारण होती है।

नहीं रखते। भोजन से पहले केवल हाथ ही धोने का दस्तूर भारतीयों में नहीं है बल्कि ये लोग सारा शरीर धोते हैं, पर चीन के लोग ऐसा नहीं किया करते।

चीन और भारत का तुलनात्मक वर्णन

भारत देश चीन से अधिक बड़ा है यहाँ तक कि दूना है। राजा भी संख्या में अधिक हैं। बस्ती के विचार से चीन बड़ा है। दोनों देशों में तमाम किस्म के वृक्ष पाए जाते हैं पर खजूर का वृक्ष दोनों में से किसी भी देश में नहीं है। बाकी सब प्रकार के फल पाए जाते हैं। अंगूर चीन में तो थोड़ा बहुत होता है परंतु भारत में बिलकुल नहीं होता। बाकी दूसरे मेवे चीन में बहुत होते हैं। केवल अनार भारत में अधिक होता है।

चीनियों में विज्ञान नहीं। वहाँ की धार्मिक बातें भारत से ली गई हैं। उनका यह भी मत है कि भारतवालों ने उनके लिये मूर्तियाँ तैयार की हैं और भारतवासी निस्संदेह उनके धार्मिक गुरु हैं। दोनों देशवासी आवागमन के माननेवाले हैं। धर्म संबंधी केवल छोटी छोटी बातों में अवश्य कुछ मतभेद है।

विद्या की चर्चा

वैद्यक और दर्शन शास्त्र में भारतीय बड़े पंडित हैं। चीनी भी वैद्यक जानते हैं। गर्म लोहे के ही प्रयोग (दागने) में वे विशेष रूप से निपुण हैं। ज्योतिष शास्त्र भी चीनी एक हद

तक अच्छा जानते हैं, परंतु भारतवासी ज्योतिष में चीनियों से अधिक योग्यता रखते हैं। दोनों देशों में से किसी देश में भी मुझे कोई मनुष्य ऐसा नहीं दिखाई पड़ा कि जिसने मुसलमानी धर्म ग्रहण किया हो अथवा जो अरबी भाषा बोलता हो।

हाथी घोड़े तथा सैनिक

भारतवर्ष में घोड़े थोड़े ही से पाए जाते हैं। चीन में अवश्य अधिक हैं परंतु चीन में हाथी नहीं हैं। चीनी लोग हाथी रखते भी नहीं, क्योंकि वे हाथी से घृणा करते हैं। भारतवर्ष में सिपाही बहुत से हैं। इनको राजा की ओर से वेतन नहीं दिया जाता, परंतु जब राजा इन्हें युद्ध के लिये बुलाता है तब वे उपस्थित हो जाते हैं। राजा से कुछ खर्च नहीं लेते बल्कि अपने पास से ही बहुत कुछ खर्च करते हैं। चीन में फौजवालों को उसी प्रकार कुछ दिया जाता है जैसे कि अरब में।

जल-वायु तथा वर्षा

चीन बहुत रमणीय तथा सुंदर देश है। भारत के बहुत से प्रांतों में बड़े बड़े रमणीय नगर नहीं हैं। चीन के प्रत्येक भाग में बड़े बड़े सुरक्षित नगर हैं। चीन देश बहुत अच्छा है। लोग बहुत ही कम बीमार हुआ करते हैं। जलवायु अति उत्तम है। अंधा या काना बहुत मुशकिल से कहीं दिखाई पड़ता है बल्कि कोई चुंधा भी बहुत मुशकिल से कहीं देखा जा सकता

है। भारतवर्ष की भूमि का भी ऐसा ही हाल है। नदियाँ दोनों देशों में बहुत बड़ी बड़ी हैं यहाँ तक कि हमारे देश की सब से बड़ी नदी से भी यहाँ की नदियाँ अधिक बड़ी हैं। दोनों देशों में वर्षा भी बहुत अधिक होती है। भारतवर्ष की भूमि में सुनसान स्थान बहुत से हैं, परंतु चीन में सारे स्थान बसे हुए हैं।

दोनों देशों का पहनावा

चीन के लोग भारतवासियों से अधिक सुंदर होते हैं। इनका वस्त्र अरबवालों के समान होता है। अरबों के समान जुब्बे पहिनते तथा कमरबंद बाँधते हैं। इनकी अन्य चाल-ढाल भी अरबों के समान होती है। घोड़े की सवारी तथा अन्य व्यवहार भी अरबों का सा होता है। भारतवासी कमर तक के दो छोटे छोटे वस्त्र धारण करते हैं। स्त्री पुरुष सभी सोने के कंगन पहिनते हैं, जो कि अमूल्य पत्थरों से जड़े होते हैं।

चीन से मिले जुले स्थान

चीन से परे तग़ज़ग़ज़ (تغزغز) नाम की भूमि है। वहाँ तुर्क जाति के लोग बसे हैं। उसीसे मिला जुला तिब्बत का ख़ाक़ान देश है। समुद्र की ओर मिले हुए भाग में सीला (سيلا) नाम का टापू है। इस टापू के लोग गोरे चिट्टे रंग के हैं। यहाँ के लोग चीन सम्राट् की सेवा में भेंट भेजते हैं। इनका ख़्याल है कि यदि हम चीन सम्राट् के यहाँ भेंट न भेजेंगे तो हमारे यहाँ

वर्षा ही न होगी, क्योंकि आकाश में हमारा कोई आदमी पहुँच ही नहीं सकता जो हमारा वृत्तांत आकाश में जा कहे। इस टापू के बाज़ (पक्षी) श्वेत रंग के होते हैं।

(दूसरा खंड समाप्त)

परिशिष्ट

१—मालद्वीप [पृष्ठ २३

अरब सागर के दक्षिणी भाग में मालद्वीप और लकद्वीप के नामों से टापुओं के जो दो बड़े विख्यात समूह हैं उनमें से मालद्वीप का वर्णन अनेक प्राचीन लोगों ने किया है, परंतु लकद्वीप की चर्चा कहीं नहीं पाई जाती। इसमें संदेह नहीं कि अनेक लेखकों ने मालद्वीप के कुल टापुओं की जो संख्या बतलाई है वह अवश्य भिन्न भिन्न है और बहुत ज्यादा है। एक लेखक का मत है कि द्वीपवासियों का कहना है कि कुल टापू १२ हज़ार की संख्या में हैं। इसी कारण वहाँ का राजा बारह हज़ार टापुओं का उत्तराधिकारी समझा जाता है। टापुओं की इस संख्या की सचाई में संशय भरपूर है परंतु इससे टापुओं की एक बड़ी संख्या होने का परिचय मिलता है और सारे लेखकों का मुख्य अभिप्राय भी यही प्रतीत होता है। ऐसी अवस्था में यह नतीजा निकलता है कि लकद्वीप नाम के टापू भी पहले मालद्वीप में संमिलित रहे हों और इन दोनों द्वीपों के बीच में इतना अंतर न रहा हो जितना आज कल है, बल्कि दोनों के बीच में पहले छोटे छोटे और बहुत से टापू रहे हों और अब वे समुद्र से नष्ट हो चुके हों। इस प्रकार

सारा मालद्वीप दो भागों में विभक्त होकर दो पृथक् पृथक् नामों से विख्यात हो गया हो।

चौदहवीं शताब्दी ईसवी का सर्वश्रेष्ठ मुसलमान यात्री इब्न बतूता अपने यात्रा-विवरण में मालद्वीप के टापुओं की बाबत कहता है कि ये टापू संसार के आश्चर्यों में से हैं। संख्या में दो हज़ार के लगभग हैं। सौ सौ टापुओं अथवा उनसे कम का एक समूह है जो गोल चक्र के आकार का होता है। उसका केवल एक दरवाज़ा होता है जिससे जहाज़ भीतर जा सकते हैं। जहाज़ों के लिये एक पथप्रदर्शक की आवश्यकता होती है, जो उस द्वीप का निवासी हो। वह सारे टापुओं में घुमा सकता है। टापुओं का प्रत्येक समूह एक दूसरे से इतना निकट है कि यदि एक से निकलते हैं तो दूसरे के खजूर के वृक्ष दृष्टिगोचर होने लगते हैं। यदि दिशा भ्रम हो जाय तो पहुँचना कठिन है और वायु जहाज़ को सीलोन या (पश्चिमी) घाट के देश में जा डालती है।

२–अंबर [पृष्ठ २५

अंबर एक सुप्रसिद्ध सुगंधित वस्तु है किंतु वह क्या है, उसकी उत्पत्ति कैसे होती है, इन सब बातों के विषय में बड़ा मतभेद है। कुछ लोगों का मत है कि यह किसी समुद्री जंतु का मल है। एक मत है कि एक विशेष प्रकार की मछली की आँतों के भीतर किसी बीमारी के कारण कोई चीज पैदा

हो जाती है, वही बाद को अंबर की सूरत ग्रहण कर लेती है। अनेक लोगों का मत है कि एक विशेष प्रकार की मक्खियों का छत्ता होता है उसमें शहद होता है। बरसात में छत्ता गिर जाता है, शहद पानी में मिल जाता है। छत्ता नदियों के सहारे पहाड़ों से समुद्र में पहुँचता है। फिर छत्ता किनारों पर आ लगता है अथवा पानी पर तैरता फिरता है। कुछ मछलियाँ उसको खाजाती हैं किंतु पचा नहीं सकतीं, इस कारण या तो मर जाती हैं अथवा उनका पेट फूल जाता है और वे थल पर आ पड़ती हैं। उन्हींके पेट से अंबर निकलता है।

मख़ज़नुल अदविया के लेखक का कथन है कि मैंने अंबर के एक टुकड़े में छोटे छोटे जानवरों के सर, गरदन और शरीर के अन्य भाग देखे।

एक मत यह भी है कि समुद्र की तह में पत्थर से कोई चीज़ मोमियाई के समान उबलकर निकलती है। फिर लहरों तथा जुआर भाटे के सहारे ऊपर आजाती है, यहाँ तक कि बहते बहते सूखी ज़मीन पर आ पड़ती है। अबूज़ैद सीराफ़ी का यही कथन है। सुप्रसिद्ध मुसलमानी हकीम बूअली सीना का भी यही मत है। अबुलफ़ज़ल के विचार से अंबर छत्ता है।

सबसे बढ़िया अंबर बड़ा स्वच्छ होता है। तोड़ा जाता है तो भीतर से पीला सा निकलता है। फ़सतक़ी और ख़शख़ाशी रंग के अंबर उससे घटिया होते हैं। काले रंग का तो सब से ख़राब होता है। मछली के पेट से जो निकलता है उसको

'मंडल' कहते हैं। मालद्वीप, मेडागासकर, यमन, हज़रमूत, और डच-गायना में यह बहुत मिलता है। अंबर पानी से हलका होता है। डाक्टर लोग इसका सत निकालते हैं और उसे अंबेरीन कहते हैं। शराब और ईथर में अंबर घुल जाया करता है।

३—नारियल

[पृष्ठ २५

नारियल बढ़िया और बहुतायत के साथ वस्तुतः उसी भूमि में होता है जिस भूमि में खार हो और जहाँ का जल-वायु खारी हो। भारतीय महासागर के लगभग सारे टापुओं की भूमि में खार बहुत है और जल-वायु भी खारी है। इस कारण इन टापुओं में नारियल बहुत होता है। नारियल की उपयोगिता की बाबत लंका में एक कहावत मशहूर है कि इस वृक्ष को मनुष्य सौ स्थानों पर प्रयोग में लाता है। लकड़ी घर बनाने, आग जलाने, जहाज़ और अन्य घरेलू कार्यों में बर्ती जाती है। पत्तों से छप्पर, चटाइयाँ और टोकरे बनाते हैं। फूल का अचार, मुरब्बा और शराब बनाते हैं। उसके दूध से लोग शराब, ताड़ी और सिरका तैयार करते हैं। गिरी से तेल और शहद बनाते हैं। छिलके का प्याला, हुक्का, दीपक और उसको जलाकर मंजन बनाते हैं। छिलके के ऊपर जो रेशे होते हैं उनसे रस्सियाँ तैयार करते हैं और उन्हें विस्तरों में भी भरते हैं। जिस प्रकार अरब निवासी खजूर को प्रेमवश

फूफी कहते हैं उसी प्रकार लंका के सिंगाली नारियल की बाबत कहते हैं कि उसको मनुष्य से इतना प्रेम होता है कि यदि मनुष्य की बोली उसके कान में न पड़े तो वह सूख जाता है। लंका के प्रत्येक भाग में नारियल के वृक्ष बहुत से हैं पर पश्चिमी भाग में इनकी संख्या बहुत ही ज्यादा है। सन् १७६७ ई० में लंका की सरकार ने नारियल के वृक्षों पर महसूल लगाने का विचार किया तो वहाँ उपद्रव मच गया।

नारियल का वृक्ष ताड़ या खजूर के समान अवश्य होता है पर उपयोगिता में उनसे कहीं बढ़चढ़ कर है। यह स्वयं उगता और बढ़ता नहीं बल्कि इसकी सेवा करनी पड़ती है, इसलिये यह नगरों के निकट ही होता है और जंगलों में नहीं पाया जाता। मालद्वीप की बाबत हंटर साहब लिखते हैं कि इन टापुओं में नारियल की खेती बहुत होती है। सड़कों के दोनों ओर इसीके वृक्ष लगाए जाते हैं। इसका वृक्ष ३० गज़ लंबा होता है और गिरी हिंदुस्तान के वृक्षों की गिरियों से बढ़िया होती है।

मालद्वीप के नारियल के विषय में इब्न बतूता ने भी लिखा है कि इन द्वीपों में नारियल के वृक्ष बहुत ही ज्यादा हैं। लोग उसको मछली के साथ खाते हैं। नारियल का वृक्ष अद्भुत होता है। वर्ष में बारह बार फल देता है। प्रत्येक मास में नया फल लगता है। उनमें से कुछ तो छोटे होते हैं, कुछ बड़े, कुछ सूखे और कुछ हरे। नारियल की अन्य उपयोगिताओं

का वर्णन करने के सिवा नारियल की रस्सियों की बाबत वे विशेष रूप से लिखते हैं कि लोग नारियल के ऊपर के छिलकों को समुद्र के किनारे गड्ढों में भिगोते हैं। फिर उनको डंडों से कूटते हैं। उसके बाद स्त्रियाँ उसको कातती हैं और जहाज़ के लिये उससे रस्सियाँ बनाती हैं। वहाँ के निवासी इन रस्सियों को बेचने के लिये भारत, यमन (अरब) और चीन ले जाते हैं। ये रस्सियाँ सन की रस्सियों से अधिक मज़बूत होती हैं। भारत और यमन में जहाज़ों की लकड़ियाँ इन्हींसे जोड़ते हैं और लोहे की मेखें प्रयोग में नहीं लाते, क्योंकि मेखें पत्थर के टकराने से टूट जाती हैं परंतु यदि तख़्ते इन रस्सियों से जकड़े हुए हों तो चाहे किसी प्रकार की टक्कर हो, जहाज़ को कुछ हानि नहीं पहुँच सकती। नारियल की रस्सी में एक बड़ी विचित्र ख़ूबी यह भी होती है कि चाहे वह निरंतर खारे जल में ही क्यों न पड़ी रहे परंतु वह कदापि नहीं सड़ती। नारियल के सिवा कौड़ियाँ भी मालद्वीप में बहुत पाई जाती हैं।

मुजमलुत् तवारीख़ नाम का एक इतिहास अबुलहसन जुरजानी ने सन् ४१७ हिजरी अर्थात् १०२६ ई० में लिखा। उसमें लेखक ने मालद्वीप के टापुओं को दो भागों में विभक्त किया है—(१) नारियल की रस्सी के टापू और (२) कौड़ियों के टापू। अलबिरूनी ने भी मालद्वीप के टापुओं का विभाग मौलाना जुरजानी ही के समान किया है।

टापुओं के सिवा बंगाल तथा दक्षिणी भारत के कई भागों में भी नारियल बहुत होता है। दो वर्ष से कुछ अधिक दिन बीते कि मुझे दो बार सूरत ज़िले के एक छोटे से ग्राम में जाने तथा ठहरने का अवसर पड़ा था। वहाँ नारियल के वृक्ष बहुत थे। वहाँ मैंने देखा कि वृक्षों में फलों के गुच्छे लगते हैं। प्रत्येक गुच्छे में छोटे बड़े फल कम से कम छः सात और अधिक से अधिक चौदह पंद्रह तक थे। उस स्थान से समुद्र तट लगभग ३ मील दूर है। मुझे बतलाया गया कि नारियल जितना ही खारी जल के निकट होता है उतनाही अधिक फलता है और उतना ही अधिक स्वादिष्ट होता है। जब बोना होता है तो नारियल को पृथ्वी में नहीं गाड़ते बल्कि प्रायः कुएँ में समूचा फल डाल देते हैं। वह कुएँ में पड़ा रहता है। कई मास के बाद अंकुर जमता है। फिर उसे निकालकर भूमि में गाड़ते हैं। नारियल को सदैव अधिक जल की आवश्यकता रहती है, पर उगने के समय तो उसे बहुत ज़्यादा जल की आवश्यकता पड़ती है। जहाँ पर्याप्त तथा अधिक जल की मात्रा नहीं वहाँ नारियल किसी सूरत से हो ही नहीं सकता। बोने के लगभग सात आठ साल बाद वह फल देने लगता है और लगभग सौ वर्षों तक बराबर फल देता रहता है। जब वृक्ष फल देना बंद कर देता है तब समझा जाता है कि वृक्ष बूढ़ा हो गया। उस समय वृक्ष काट डाला जाता है और दूसरे कामों में लाया जाता है।

४-कौड़ियाँ

[पृष्ठ २६

सोने चाँदी और ताँबे आदि के सिक्कों तथा काग़ज़ी नोटों आदि का चलन अब बहुत हो चला है। परंतु अब से पचास वर्ष पहले भी कौड़ियों का चलन बहुत था। इससे पहले विशेषत: समुद्र के किनारे के देशों में प्राय: बहुत ही ज़्यादा था। चीन, यूनान, भारतीय टापू, बंगाल, मालद्वीप और अफ़्रीका में प्राय: केवल कौड़ियों से ही लेन-देन होता था। चौदहवीं शताब्दी ईसवी में बंगाल देश में कौड़ियों के सिवा किसी अन्य सिक्के का चलन ही नहीं था। सन् १७७८ ई० से १८१३ ई० तक सिलहट (आसाम) की सरकारी माल-गुज़ारी, जो ढाई लाख के लगभग थी, कौड़ियों ही में वसूल की जाती थी। एक रुपए की पाँच हज़ार एक सौ बीस कौड़ियाँ आती थीं। वे जहाज़ में भर भरकर कलकत्ते भेजी जाती थीं। सन् १७८० ई० में एक पैसे की अस्सी कौड़ियाँ आती थीं।

मालद्वीप के टापुओं का हाल लिखते हुए इब्न बतूता कहता है कि इन टापुओं में कौड़ियों का चलन है। कौड़ी एक जंतु होता है। समुद्र में से कौड़ियों को चुनकर एक गड्ढे में किनारे पर एकत्र करते हैं। वे फिर सूख जाती हैं और उनकी सफ़ेद हड्डी बाक़ी रह जाती है। सौ कौड़ियों को सियाह कहते हैं, सात सौ को फ़ाल, बारह हज़ार को कुत्ती, और लाख को बुस्तू कहा जाता है। चार बुस्तू को एक सुनहरी अशरफ़ी के बदले में बेंचते हैं। वे कभी कभी सस्ती भी हो जाती हैं तो

एक अशरफ़ी की दस बुस्तू तक मिलती हैं। बंगाल के निवासी इनके बदले चावल दे जाते हैं। बंगाल देश में भी कौड़ियों का चलन है। यमन (अरब) के लोग भी कौड़ियाँ खरीदते हैं। बोझा जमाने के लिये रेत के बदले कौड़ियों को ही वे लोग अपने जहाज़ में बिछा लेते हैं। सुदान (अफ़्रीका) में भी कौड़ियों का चलन है। अफ़्रीका के माली और जूजू देशों में एक सुनहरी अशरफ़ी के बदले ग्यारह सौ पचास कौड़ियाँ बिकती हैं।

'सियरुल-मुताअख़्ख़रीन' नामी इतिहास में बंगाल के विषय में लिखा है कि यहाँ लेन देन कौड़ी से होता है। कौड़ी समुद्र पार से लाते हैं। चार कौड़ियों को गंडा बोलते हैं। पाँच गंडे को बोडी, चार बोडी को पन कहते हैं, सोलह पन का कहावन, और दस कहावन का एक रुपया होता है। (पन = पण, कहावन = कार्षापण, तांबे के पुराने सिक्के)।

कौड़ियाँ अधिकांश स्याम, सोलो (जावा के निकट), फिलीपाइन और मालद्वीप के टापुओं में होती हैं। हंटर साहब अपने गैज़ेटियर में लिखते हैं कि मालद्वीप में आज कल भी बारह हज़ार कौड़ियों को कोटा और गोला भी कहते हैं। एक रुपये की बारह हज़ार कौड़ियाँ आती हैं। वहाँ रुपया आज कल भारतवर्ष का चलता है। सन् १७४० ई० में एक रुपए की दो हज़ार चार सौ कौड़ियाँ आती थीं। गिनी के

किनारे के काले लोग कौड़ियाँ को केवल रुपए पैसे के ही समान नहीं इस्तेमाल करते बल्कि स्त्री पुरुष कौड़ियों के गहने बनाकर भी पहिनते हैं। कौड़ियाँ वहाँ की बड़ी सफ़ेद और चमकदार होती हैं, इस कारण उनके काले रंग पर अति शोभायमान मालूम होती हैं। ये कौड़ियाँ उन टापुओं के किनारों पर ढेर की ढेर पड़ी हुई होती हैं। ये हवा से बहकर एकत्र हो जाती हैं। किसी किसी टापू में तो पृथ्वी के खोदने से भीतर से भी कौड़ियाँ निकलती हैं।

चार कौड़ी का गंडा, दो गंडे की दमड़ी, दो दमड़ी का छदाम, दो छदाम का अधेला और दो अधेले का पैसा—यों ६४ कौड़ी का पैसा भारत के बहुत हिस्सों में माना जाता था। कभी घटा बढ़ी से एक पैसे की ८० कौड़ियाँ तक हो जाती हैं। पैसा २५, अधेला १२॥, छदाम ६। लिखा जाता है क्योंकि अकबरी क्रम से पैसे के २५ दाम गिने जाते हैं। अब चीज़ों का मोल बढ़ने से कौड़ियों का चलन उठता जाता है।

मुझे एक बड़े बूढ़े अनुभवी वैद्य ने बतलाया है कि जो कौड़ी पीली हो उसको यदि अग्नि में खूब जलाया जाय, फिर कूट कर उसका चूर्ण बनाया जाय और उस चूर्ण में घी मिला-कर उसे ऐसे स्थान में लगाया जाय जहाँ किसी फोड़े तथा घाव हो जाने के कारण चमड़ा न चढ़ता हो तो चमड़ा शीघ्र ही आजाता है।

५—पूज्य पितामह बाबा आदम का पग-चिह्न

अनेक लोगों के मत। [पृष्ठ २७

मुसलमान—अनेक मुसलमान लेखकों का कथन है कि ख़ुदा ने जब परम पितामह हज़रत आदम और उनकी धर्मपत्नी हज़रत हव्वा को पैदा किया तब उनको स्वर्ग में रखा। वहाँ इन्होंने ख़ुदा की आज्ञा का उल्लंघन किया। इसपर ख़ुदा ने इनमें से हज़रत आदम को लंका और हज़रत हव्वा को अरब के जद्दा नगर में उतारा। हज़रत आदम ने एक पैर लंका के नूद नाम के पहाड़ पर रक्खा जहाँ कि पग का चिह्न है, दूसरा समुद्र अथवा किसी अन्य स्थान में रक्खा।

हिंदू—वह पग-चिह्न जिसको कि मुसलमान लोग हज़रत आदम के पग का चिह्न बतलाते हैं हिंदुओं के मत में विष्णु-पद है। ऐसे छोटे बड़े कई विष्णुपद हिंदुस्तान के भिन्न भिन्न स्थानों में हैं। कई इसे शिवजी का पदचिह्न कहते हैं।

बौद्ध—सिंहल इतिहास की एक महत्वपूर्ण प्राचीन पुस्तक महा-बंसो है। लंका के विषय में इसमें बहुत कुछ लिखा है। अंग्रेजों के मतानुसार पाँचवीं शताब्दी ईसवी के मध्यकाल में यह रची गई थी। इससे साबित होता है कि बौद्ध धर्म के अनुयायी इस पग-चिह्न को शाक्य मुनि अर्थात् महात्मा बुद्ध का पवित्र पग-चिह्न समझते हैं। बौद्ध धर्म के अनुयायियों का ख़याल है कि इसी पहाड़ पर से

महात्मा बुद्ध आकाश को चढ़े थे। बुद्ध के ऐसे पदचिह्न हिंदुस्तान में कई जगह मिले हैं।

टेनेंट—सर एमर्सन टेनेंट का कथन है कि अब यह स्थान बौद्ध-धर्म वालों के हाथ में है। इसको 'श्रीपद' कहते हैं। यह पहाड़ लंका के दक्षिणी भाग में है। 'कोहआदम' उसकी सब से ऊँची नहीं, परंतु सब से अधिक सुप्रसिद्ध चोटी है। वह समुद्र के धरातल से लगभग ७००० फुट ऊँची है। वर्तमान काल में इस पहाड़ को देखने के लिये बहुधा लोग कोलंबो और रतनपुर के रास्ते से जाते हैं। समुद्र तट से चोटी ६५ मील की दूरी पर है। इसमें से दो तिहाई मार्ग मैदान का है। रतनपुर से केवल घोड़े और पैदल का मार्ग रह जाता है। मार्ग का प्रारंभिक भाग ऐसे जंगल में से है कि घने वृक्षों के कारण वहाँ सूर्य दिखलाई भी नहीं पड़ता। यात्रियों के लिये अनेक स्थानों पर धर्म-शालाएँ हैं। केवल ९ मील में ७००० फुट की ऊँचाई चढ़नी पड़ती है। ६ मील तक असली चोटी दीख नहीं पड़ती। जब तीन मील की चढ़ाई बाकी रह जाती है तब चोटी दिखाई पड़ने लगती है। उसके पश्चात् बिल्कुल सीधी चढ़ाई है। पत्थर को काट काट कर सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। इन सीढ़ियों के पश्चात् ज़ंजीरों के सहारे चढ़ना पड़ता है। इन ज़ंजीरों पर से यदि कोई नीचे देखता है तो सिर घूम जाता है। यदि तनिक भी पैर चूक जाय तो मनुष्य

का कुछ पता न लगे। प्रत्येक चढ़नेवाले को जतला दिया जाता है कि वह नीचे की ओर न देखे और पैर सँभाल सँभाल कर रक्खे। इसके पश्चात् लोहे की सीढ़ी ४० फुट ऊँची है। उसके पश्चात् एक चौतरा मिलता है। वहीं एक छाई हुई जगह के नीचे पवित्र पग-चिह्न है। पग-चिह्न की लंबाई पाँच फुट है। पग का चिह्न साफ़ साफ़ नहीं है, केवल एक गड्ढा लंबा सा है। इस चोटी के ऊपर से पृथ्वी और समुद्र का दृश्य अति सुहावना मालूम होता है।

इब्न बतूता—यह (कोह-आदम) पहाड़ संसार के ऊँचे पहाड़ों में से है[1]। यद्यपि यह समुद्र तट से नौ मंज़िल दूर है तथापि हम ने उसको समुद्र में से देखा था। जब हम उसके ऊपर गए तब बादल हमें नीचे दिखाई पड़ते थे और पहाड़ की जड़ और हमारे बीच में आड़ से हो गए थे। इस पहाड़ में ऐसे बहुत से वृक्ष होते हैं जिनके पत्ते कभी नहीं झड़ते और जिनके फूल अनेक रंगों के होते हैं। लाल गुलाब का फूल हथेली के बराबर होता है। लोगों का ख्याल है कि उस फूल में 'अल्लाह' और 'मुहम्मद' का नाम प्रकृति की लेखिनी से लिखा हुआ होता है।

उस पहाड़ में क़दम (पग-चिह्न) तक जाने के दो मार्ग हैं। एक 'बाबा' का मार्ग और दूसरा 'मामा' का मार्ग,

---

(१) आदम पहाड़ की सब से ऊँची चोटी ७३७१ फुट ऊँची है।

अर्थात् परम पितामह पूज्य बाबा आदम और उनकी धर्मपत्नी अम्मा हव्वा का कहलाता है। 'मामा' का मार्ग सुगम है। उस मार्ग से यात्री वापस आते हैं। यदि कोई उस मार्ग से जाता है तो समझा जाता है कि उस जाने वाले ने पग-चिह्न का दर्शन ही नहीं किया। 'बाबा' का मार्ग बड़ा कठिन है। उसपर चढ़ना अति दुस्तर है। पहाड़ के नीचे एक खोह है, वहीं 'बाबा' के मार्ग का दरवाज़ा है। उस दरवाज़े को सिकंदर का बनाया कहते हैं। यहीं पानी का एक स्रोत भी है। पहले समय के मनुष्यों ने पहाड़ों में सीढ़ियाँ खुदवा रखी हैं। उन्हीं पर चढ़ते हैं। इनमें लोहे की कीलें गाड़कर उन्हींके सहारे लोहे की ज़ंजीरें लटकाई हैं कि चढ़नेवाला उनको पकड़े हुए चढ़े।

ज़ंजीरें संख्या में कुल दस हैं। दो पहाड़ के नीचे हैं जहाँ कि दरवाज़ा है, सात क्रम क्रम से इन दोनों के बाद हैं। दसवीं ज़ंजीर को 'ज़ंजीर शहादत' कहते हैं क्योंकि जब मनुष्य वहाँ पहुँचता है और पहाड़ के नीचे की ओर देखता है तब उसके होश उड़ जाते हैं और गिरने के भय से वह 'कलमः शहादत'[1] पढ़ना आरंभ कर देता है।

---

(१) 'कलमः शहादत' अर्थात् हज़रत मुहम्मद साहब के ईश्वरी दूत होने की गवाही का वाक्य यह है—"अशहदो अन ला इलाहा इल्लल्लाहो व अशहदो अन्ना मुहम्मदन् अब्दहू व रसूलहू।" (اشهد ان لا اله الا الله و اشهد ان محمدا عبده و رسوله) इसका अनुवाद

इसवीं ज़ंजीर से लेकर 'खोहख़िज़िर' तक दस मील का फ़ासला है। वह एक फैले हुए स्थान में है। उसके निकट पानी का एक स्रोत है। वह हज़रत ख़िज़िर साहब पैगंबर से संबंध रखता है। उस स्रोत में मछलियाँ बहुत सी हैं। कोई मनुष्य उनको पकड़ नहीं सकता। उसके निकट मार्ग के दोनों ओर दो हौज़ हैं। ये पहाड़ में खुदे हुए हैं। दर्शनार्थ जानेवाले सब यात्री 'खोहख़िज़िर' में अपने पास का सारा सामान छोड़ जाते हैं, फिर दो मील ऊपर की यात्रा करते हैं जहाँ कि 'पग-चिह्न' है। पूज्य पितामह बाबा आदम के पग का चिह्न एक सख़्त काले पत्थर में है। वह ऊँचे स्थान पर है और मैदान में पड़ा हुआ है। (पूज्य बाबा आदम का) पवित्र पग पत्थर में घुस गया था और उसका निशान हो गया था। उसकी लंबाई ग्यारह बित्ते की है।

पहले यहाँ चीन के निवासी आते थे। वे अंगूठे की जगह का पत्थर तोड़कर ले गए और उसे उन्होंने (चीन के) जैतून नामी नगर के एक मंदिर में जा रक्खा। वहाँ भी चीनवासी दर्शन के निमित्त बहुत आते हैं। पग-चिह्न के पास पत्थर में नौ गढ़े खुदे हुए हैं। हिंदू यात्री

यह है—"मैं साक्षी होता हूँ कि कोई भी देव पूजने योग्य नहीं है सिवाय अद्वितीय परमात्मा के और साक्षी हूँ कि हज़रत मुहम्मद साहब ईश्वर के बंदे और ईश्वर के रसूल हैं।"

इन गड्ढों में सोना, लाल और मोती भर जाते हैं। इस कारण फ़क़ीर लोग जब 'खोहख़िज़िर' में पहुँचते हैं तब जल्दी करके सब से पहले पहुँचते हैं ताकि जो कुछ उन गड्ढ़ों में मिले, ले लेवें। हम जब आए तब बहुत थोड़ा सोना और रत्न उनमें थे। वह सब हमने अपने मार्ग बतलाने वाले को दे दिया। प्रथा यह है कि दर्शन करनेवाले यात्री 'खोहख़िज़िर' में तीन दिन तक ठहरते हैं और तीनों दिन बराबर सायं प्रात: पग-चिह्न के दर्शन के निमित्त आते हैं, सो हमने भी ऐसा ही किया। जब तीन दिन बीत गए तो 'मामा हव्वा' के मार्ग से वापस आए।

नाप—पग-चिह्न की लंबाई वर्तमान काल में पाँच अथवा साढ़े पाँच फुट है। सर एमर्सन टेनेंट का कथन है कि 'पग-चिह्न' की लंबाई पाँच फुट है। इब्न बतूता ने वह ग्यारह बित्ते बतलाई है। इस प्रकार भिन्न भिन्न लेखकों तथा यात्रियों ने भिन्न भिन्न लिखा है। सुलैमान सौदागर ने पग-चिह्न की लंबाई सत्तर हाथ लिखी है। लंका निवासियों में यह बात प्रसिद्ध है कि पग-चिह्न की लंबाई प्रत्येक मनुष्य को उसके विश्वास के अनुसार दिखाई पड़ती है। इसपर एक साहब कहते हैं कि सुलैमान सौदागर ने उसकी लंबाई सत्तर हाथ लिखी इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उसका विश्वास सब से बड़ा था।

ज़ंजीरें—इब्न बतूता तथा सर एमर्सन टेनेंट दोनों जंजीरों का वर्णन करते हैं। इनके बारे में अशरफ़ नामी एक ईरानी कवि अपने ग्रंथ सिकंदरनामः में लिखता है कि सिकंदर जब लंका में गया था तो उसने इन ज़ंजीरों को चढ़ने के लिये बनवाया था। इब्न बतूता ने दरवाज़े का सिकंदर से संबंध जोड़ा है, परंतु यह किंवदंती ही है क्योंकि सिकंदर लंका में गया ही नहीं था। संभव है कि उसने स्वप्न में लंका देखी हो। ज़ंजीरें वर्तमान समय में भी मौजूद हैं। उनपर कुछ खुदा भी है किंतु वह पढ़ा ही नहीं जाता। वस्तुतः यह बौद्ध स्थान है और ज़ंजीरें बौद्ध यात्रियों तथा भिक्षुओं के सुभीते के लिये धर्मात्माओं ने लगवाई हैं।

९–सुगंधित लकड़ियाँ अर्थात् ऊद [पृष्ठ २७

'सुगंधित लकड़ियों' से जिससे अभिप्राय है उसको अरबी में 'ऊद' (عود) कहते हैं। उसका वृक्ष बिलूत के वृक्ष के समान होता है। पत्ते भी बिल्कुल बिलूत के पत्तों के समान होते हैं। छाल पतली होती है। जड़ें बहुत लंबी होती हैं और उनमें से इत्र की सी सुगंधि आती है। परंतु लकड़ी और पत्तों में सुगंधि नहीं हुआ करती। वृक्ष पूरे तौर से बढ़ने नहीं पाता और न उसमें कोई फल ही लगता है। अनेक लेखकों ने ऊद के विषय में जो कुछ लिखा है उससे स्पष्ट पता लगता है कि ऊद कई प्रकार का होता है, और स्याम देश की

पूर्वीय भूमि में ऊद बहुत बढ़िया और बहुतायत से होता है। वहाँ के लोग लकड़ी को गीली ज़मीन में गाड़ देते हैं। कभी कभी लकड़ी गल जाती है, बाकी को जब निकालते हैं तो उसमें सुगंधि पैदा हो जाती है। यह भारतवर्ष में बिलकुल नहीं होती परंतु अरब और ईरान में यह 'ऊद हिंदी' के नाम से ही विख्यात है। इसका कारण यह है कि उन देशों में यह वस्तु यहीं से होकर जाती थी। अबुलफ़ज़्ल ने लिखा है कि गुजरात के एक राजा ने इसको मँगवाकर चांपानेर में लगवाया था।

७–शंख

[पृष्ठ २७

शंख वास्तव में कौड़ी ही की एक जाति है। सारे मंदिरों तथा देव-स्थानों में बहुधा जो शंख बजाए जाते हैं वे साधारण शंख हैं। उनसे भी बड़े बड़े शंख होते हैं। उनका आकार-प्रकार भी बड़ा विलक्षण होता है। वे बहुत ज़ोर लगाने से बजते हैं। उनकी ध्वनि भी बहुत दूर तक पहुँचती है। गीता के प्रथम अध्याय से ही पता लगता है कि महाभारत के मुख्य मुख्य योद्धाओं के पास बड़े बड़े शंख थे। उन शंखों के भिन्न भिन्न नाम थे। युद्ध से पहले खूब शंख-ध्वनि हुई थी, मानो शंखों से बिगुल अथवा फ़ौजी बाजे का काम लिया जाता था।

बड़े बड़े शंखों के सिवा बहुतेरे शंख बहुत छोटे छोटे भी होते हैं, यहाँ तक कि कौड़ियों के बराबर भी होते हैं। मैंने

गुजरात में समुद्र के तट पर ऐसे छोटे छोटे शंख बहुत देखे हैं। उनकी आकृति तथा रंग रूप बड़ा विचित्र होता है। वे बड़े सुंदर और नाना प्रकार के भी होते हैं। समुद्र-तटवासी उनमें छेद करके माला गूँथते हैं, अथवा उनकी झालरें बनाकर घरों के दरवाज़ों पर लगा देते हैं। कई दरवाज़ों पर मैंने ऐसी झालरें लगी हुई देखीं। वे बड़ी सुंदर मालूम होती थीं। मेरे विचार से यदि छोटे छोटे शंख ओवरकोट के बटनों तथा बड़े बटनों के निमित्त प्रयोग किए जायँ तो वे उपयोगिता और सौंदर्य दोनों में उत्तम होंगे।

८—कपूर

[पृष्ठ २८

'फ़नसुर' शब्द किसी ग्रंथ में 'क़नसूर', किसी में 'क़ैसूर' और 'पनसूर' दिया हुआ है। ठीक बात यह है कि सुमात्रा टापू में 'पनसुर' नाम का स्थान है। उसी स्थान के इलाक़े या उसी स्थान का नाम बालूस या बारूस भी है। वहाँ का कपूर बढ़िया होता है। इस कारण उस स्थान के कपूर का नाम ही स्थान के नाम से पड़ गया है। 'आईन अकबरी' में बढ़िया फ़नसुरी कपूर का मूल्य तीन रुपए से लेकर बीस रुपए प्रति तोला लिखा हुआ है। इसीका दूसरा नाम 'भीमसेनी' लिखा है। संस्कृत में एक द्वीप का नाम ही 'कर्पूर' अर्थात् 'कपूरद्वीप' है। संभव है कि सुमात्रा का ही यह नाम रहा हो। फ़नसूर सुमात्रा के पश्चिमी भाग में आचीन स्थान के दक्षिण में है। सत्रहवीं शताब्दी

ईसवी के मध्य काल में हमज़ा पनसूरी नामी एक सुप्रसिद्ध सूफी कवि यहीं के हुए हैं।

कई लेखकों ने फ़नसूर को कुछ का कुछ लिख मारा है और ऐसा मालूम होता है कि उन्हें ठीक ठीक पता नहीं चला था। परंतु सुलैमान के लेख से भी यही स्पष्ट नतीजा निकलता है कि सुलैमान को भी ठीक ठीक पता नहीं लगा था, क्योंकि उसके अरबी लेख से ध्वनि निकलती है कि फ़नसुर कपूर खानों से निकलता है। किंतु ठीक बात यह है कि फ़नसूरी अथवा किसी अन्य प्रकार का कपुर खान से नहीं निकलता। इस कारण उस स्थान पर मूल अरबी का भावार्थ यह लिया जाय कि वहाँ फ़नसूरी कपूर बहुत ज्यादा होता है तो अनुचित न होगा।

बात यह है कि काफ़ूर का वृक्ष होता है। एक लेखक का कथन है कि काफ़ूर का वृक्ष जावा द्वीप में इतना बड़ा होता है कि उसकी छाया में सौ मनुष्य विश्राम कर सकते हैं। एक लेखक कहता है कि काफ़ूर के वृक्ष की ऊँचाई दो सौ फुट तक होती है। वृक्ष के ऊँचे भाग पर जाकर तने में छेद कर देते हैं तो उसमें से पानी सा निकलता है और वह जम जाता है। नीचे के भागों में काफ़ूर के डले छाल के नीचे पाए जाते हैं। ये डले तौल में आध पाव से लेकर आध सेर तक होते हैं। इब्न बतूता कहता है कि काफ़ूर का वृक्ष बिल्कुल बाँस के समान होता है, किंतु पोरियाँ लंबी और मोटी

होती हैं। काफ़ूर पोरियों के भीतर से निकलता है। सब से बढ़िया काफ़ूर बड़ा ठंडा होता है। उसको यदि कोई थोड़ा सा भी खा लेवे तो वह ठंडा हो जाता है। परंतु सच तो यह है कि असली काफ़ूर की प्राप्ति में बहुत कठिनाई उठानी पड़ती है।

कहा जाता है कि कपुर-वृक्ष के सिवा कुछ अन्य वृक्षों से भी कपूर निकाला जाता है और बहुधा वही बर्ता जाता है। सुमात्रा और जावा के सिवा चीन के दक्षिणी भाग, जापान और फारमोसा में भी कपूर के वृक्ष हैं अथवा ऐसे वृक्ष होते हैं जिनसे कपूर निकाला जाता है। विधि यह है कि वृक्ष के छोटे छोटे भाग, शाखें, जड़ और पत्ते सहित सब के सब पानी में भिगो दिए जाते हैं। कुछ दिनों के बाद जब उनका सार पानी में उतर आता है तब पानी को अग्नि पर उड़ाकर कपूर निकाला जाता है। उस समय वह बिल्कुल साफ़ नहीं रहता, बाद को अच्छी तरह से साफ़ किया जाता है और ठीक ठाक करके बाज़ारों में बेचा जाता है।

८—पतंग की लकड़ी [पृष्ठ ३०

'पतंग की लकड़ी' का अभिप्राय जिससे है उसको अरबी में 'बक़म' कहते हैं। यह लकड़ी भारत तथा भारतीय सागर के टापुओं के सिवा अमेरिका में भी बहुत होती है। अब यह दक्षिणी अमेरिका के ब्राज़ील देश से आती है, इस कारण अंग्रेजी में इसको ब्राज़ील की लकड़ी कहते हैं। फ़्रांसीसी में भी

ब्राज़ील ही कहते हैं। इसका वृक्ष बहुत बड़ा और काँटेदार होता है। यह दक्षिणी भारत के पश्चिमी भाग तथा लंका में भी बहुत होता है। पत्ता बादाम के पत्ते के समान होता है। फूल पीले, और फल गोल तथा लाल होते हैं। फलों को भिगोकर रंग निकाला जाता है। रंगरेज़ पहले इसके लाल रंग से बहुत काम लेते थे। गुलाल जो होली में प्रयोग किया जाता है कहीं कहीं इसी लकड़ी के बुरादे से बनता है।

गोवा से लेकर ट्रावंकोर तक यह स्वयमेव उत्पन्न होता है। मोपले (मलाबार के अरब मुसलमान) लोग इसको बोते भी हैं। इन मुसलमानों में से किसीके घर जब कोई लड़की पैदा होती है तब उसके जन्म के बाद ही पतंग की लकड़ी के वृक्ष लगा दिए जाते हैं। चौदह पंद्रह वर्ष में जब लड़की विवाह योग्य होजाती है उस समय वे वृक्ष भी काटने योग्य हो जाते हैं। उनको काटकर और बेचकर वे लड़की को दहेज़ देते हैं।

१०—बेंत

[पृष्ठ ३०

बेंत भी बड़े काम का पदार्थ है। किसी किसी स्थान में रस्सी का सारा कार्य्य बेंत के छिलके ही से लिया जाता है। इसके पत्ते खजूर के पत्तों के समान होते हैं परंतु आकार में छोटे होते हैं। यह कहना कि—

फूले फले न बेंत जदपि सुधा बरसें जलद

सर्वथा ठीक नहीं, क्योंकि बेंत फलता है और उसके फल

भी खजूर ही के समान होते हैं। फल गला पकड़नेवाला होता है परंतु लोग उसे खाते हैं।

बेंत की कई किस्में हैं। एक बेंत की शाखें अंगूठे के समान मोटी होती हैं और उसमें दूर दूर पर गिरहँ होती हैं। यही बेंत सब से बढ़िया होता है। यह अधिकांश सुमात्रा और जावा के टापुओं में होता है। दूसरी किस्म का बेंत बेल के समान फैला करता है। उसकी शाखें कुछ पतली और काँटेदार होती हैं। उसीसे ही कुर्सी और पालकी आदि की बिनाई की जाती है। ऐसा बेंत बंगाल में भी बहुत होता है। तीसरे प्रकार का बेंत बड़ा पतला होता है। उसमें न तो काँटा ही होता है और न फल लगता है। उसीसे सीतलपाटी बनाई जाती है। ऐसा बेंत केवल सिलहट (आसाम) में नदी के किनारे पैदा होता है। कहा जाता है कि ऐसे बेंत से ही ऐसी मुलायम सीतलपाटियाँ भी तैयार होती हैं कि साँप भी उनपर से चलता हुआ फिसलता है।

११--जहाज़ [पृष्ठ ३०

अनेक लोग जब यह सुनते हैं कि पहले भी जहाज़ बनाए जाते थे अथवा अब से एक हज़ार वर्ष या पाँच सौ वर्ष पहले भी जहाज़ों से काम लिया जाता था तब बड़ा आश्चर्य करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि पहले के जहाज़ ऐसे नहीं रहे होंगे जैसे कि आज कल के हैं, तथापि उपयोगिता के लिहाज़ से वे बुरे भी

नहीं थे। सुलैमान के यात्रा-विवरण से स्पष्ट पता चलता है कि चीन के लोग नवीं शताब्दी ईसवी में भारत तथा अरब तक और भारत तथा अरब के लोग चीन तक जहाज़ों द्वारा ही व्यापार करते और भारतीय महासागर से होकर गुज़रते थे, अनेक टापुओं में पहुँचते थे। उस समय तो यूरोपवाले बड़ी समुद्रयात्राएँ नहीं कर सकते थे।

कुछ दिन हुए मैं गुजरात देश में गया था। उस समय समुद्र दर्शन के निमित्त टीथल पहुँचा। वहाँ एक सादी नौका के सहारे समुद्र के अंदर गया। उस बड़ी नौका में कोई कल नहीं थी, वह बिल्कुल प्राचीन प्रणाली की थी। परंतु उसके सहारे ऐसे आनंद की यात्रा हुई कि जिसको मैं ही जानता हूँ। वहीं मैंने बहुत बड़ी बड़ी नौकाएँ भी देखीं जिनको बिना किसी प्रकार की कल के मल्लाह लोग बसरा ले जाते हैं। वे मल्लाह केवल पुराने ढंग के बादबानों से ही काम लेते हैं। उन नौकाओं से पहले ज़माने के जहाज़ों की बाबत बहुत कुछ अनुमान बड़ी सुगमता से किया जा सकता है। इसके सिवा भारतीय जहाज़ों की बाबत श्री राधाकुमुद मुकरजी, एम० ए०, पीएच० डी०, की पुस्तक 'A History of Indian Shipping and Maritime Activity' से भी बहुत कुछ पता लग सकता है।

अब से लगभग सात सौ वर्ष पहले चीन में जहाज़ कैसे होते थे, इस बात को जानने के लिये इब्न बतूता के लेख से

बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। चीन की यात्रा का हाल लिखते हुए इब्न बतूता कहता है कि चीन के जहाज़ तीन प्रकार के होते हैं। बड़े जहाज़ों को जनक कहते हैं, मझोले को ज़ब और छोटे को ककम। बड़े जहाज़ में बारह मस्तूल (पाल) होते हैं और छोटे में तीन। ये मस्तूल बेंत के बने हुए होते हैं। पालों की बुनावट चटाई के समान होती है। उनको कभी नीचे नहीं गिराया जाता। हवा की ओर उनको फेर दिया जाता है। जब जहाज़ लंगर डालते हैं उस समय भी पाल खड़े ही रहते हैं और हवा के साथ उड़ते रहते हैं। प्रत्येक जहाज़ में एक हज़ार मनुष्य होते हैं। छः सौ तो जहाज़ से संबंध रखनेवाले होते हैं और चार सौ सिपाही होते हैं। इनमें से कुछ बाण चलानेवाले और चरख़ी के सहारे बारूद फेंकनेवाले होते हैं। प्रत्येक बड़े जहाज़ के साथ तीन छोटे जहाज़ होते हैं। इनमें से एक बड़े से आधा, दूसरा उसका तिहाई और तीसरा बड़े का चौथाई होता है।

यह जहाज़ चीन के ज़ैतून नगर तथा बड़े चीन में बनाए जाते हैं। इनके बनाए जाने की तरकीब यह है कि प्रथम लकड़ी की दो दीवारें बनाते हैं। फिर दोनों दीवारों को मोटी लकड़ियों से मिलाते हैं। इन लकड़ियों के लंबान तथा चौड़ान में तीन तीन गज़ की मेख़ें जड़ते हैं। जब ये दीवारें तैयार होकर इस प्रकार मिला दी जाती हैं तब उन दीवारों पर फ़र्श बनाते हैं वही जहाज़ के सब से नीचे के हिस्से का फ़र्श होता

है। उनको फिर समुद्र में डाल देते हैं। यह ढाँचा पानी में किनारे पर ही पड़ा रहता है। लोग आकर उसपर नहाते हैं और पेशाब, पाखाना करते हैं। कुछ काल पीछे वह पूर्ण रूप से बनाया जाता है। नीचे के लट्ठों के पास चप्पू लगाए जाते हैं जो खंभों के समान मोटे होते हैं। एक एक चप्पू पर दस से लेकर पंद्रह तक मल्लाह खेने का काम करते हैं। ये मल्लाह खड़े होकर खेया करते हैं। प्रत्येक जहाज़ की चार छतें होती हैं। सौदागरों के लिये घर, कोठरियाँ, और खिड़कियाँ बनी हुई होती हैं। कोठरी में रहने के स्थान के सिवा संडास भी होते हैं। उसका दरवाज़ा भी होता है जिसपर ताला लग जाता है। जो मनुष्य कोठरी लेता है वह दरवाज़ा बंद कर लेता है और अपने साथ स्त्रियों को ले जा सकता है। कोठरी में रहनेवाले को किसी किसी समय जहाज़वाले जान भी नहीं सकते कि जहाज़ में है भी या नहीं। जब किसी स्थान में जहाज़ लंगर डालता है और वहाँ मेल-जोल होजाता है तो मालूम होता है कि अमुक भी जहाज़ में है।

मल्लाह और सिपाही जहाज़ ही में रहते हैं। उनके लड़के बाले भी जहाज़ ही में रहते हैं। हौज़ के समान बड़े बड़े गमले लकड़ियों के बनाते हैं। उनमें तरकारियाँ और अदरक आदि बो देते हैं। जहाज़ का प्रधान अधिकारी बड़े ठाटबाट वाला होता है। जब वह थल में जाता है तब बाजा चलानेवाले और नौकर लोग अस्त्रशस्त्र बाँधे हुए उसके आगे आगे चलते हैं।

गाजे बाजे भी साथ होते हैं। जब किसी ऐसे स्थान पर पहुँचते हैं जहाँ कि ठहरना चाहते हैं तब अपने नेज़ों को उस स्थान के दोनों ओर गाड़ देते हैं। जब तक वहाँ ठहरे रहते हैं नेज़े गड़े रहते हैं। चीन के लोग कभी कभी कई ज़हाज़ों के स्वामी होते हैं। अधिकारी जहाजों पर रहते हैं। चीनवालों से अधिक धनी किसी अन्य स्थान के लोग नहीं हैं।

जानना चाहिए कि आज कल भी चीन देश में जहाज़ को जनक (Junk) ही कहते हैं। एक हज़ार े भी अधिक वर्ष बीत रहे हैं जब कि चीन के लोग मलाबार के किनारे जहाज़ों को लेकर व्यापारार्थ बहुत ही आया करते थे। इन लोगों ने आना कब छोड़ा इस विषय में कुछ ठीक कहा नहीं जा सकता। एक ईसाई लेखक का कथन है कि कालीकट के राजा ने एक बार चीनियों के साथ बुरा व्यवहार किया। वे लोग दूसरी बार बहुत ज़ोर बाँध कर आए और कालीकट के बहुत से निवासियों का वध करके चले गए, फिर नहीं आए। इसके पश्चात् वे मछलीपट्टन में जो पूर्वीय तट पर है व्यापार करने लगे।

इब्न बतूता जब चीन गया था तब वहाँ पहुँचने से पहले जहाज़ द्वारा पैसिफिक महासागर से पार होने का जो वृत्तांत उसने दिया है उससे भी चीन के जहाज़ों की बाबत थोड़ा बहुत पता लग जाता है। वह कहता है कि इस समुद्र में न तो वायु है न लहर और न झकोरा ही है। इसी कारण प्रत्येक

जहाज़ के साथ तीन और जहाज़ होते हैं। उन सभों को मल्लाह खेते हैं तब जहाज़ चलता है। बड़े जहाज़ में भी बीस चप्पू एक ओर और बीस ही दूसरी ओर होते हैं। प्रत्येक चप्पू खंभे के समान होता है और उसपर तीस तीस मनुष्य काम करते हैं। प्रत्येक में दो बड़ी बड़ी रस्सियाँ बँधी हुई होती हैं। जब एक समूह के लोग उसको पकड़ कर खींच और छोड़ देते हैं तब दूसरे लोग अपनी रस्सी को खींचते हैं। खींचने के समय ये लोग मीठे स्वर से गाते हैं और 'लाली' 'लाली' करते हैं।

इब्न बतूता ने चीनी जहाज़ों के समान भारतीय जहाज़ों के विषय में विशेष रूप से कुछ नहीं लिखा, परंतु पश्चिमी घाट की यात्रा का वृत्तांत देते हुए एक अवसर पर जो कुछ उसने लिखा है उससे उस समय के भारतीय जहाज़ों का एक छोटा मोटा चित्र खींचा जा सकता है। भड़ौंच के समीप कंधार नामी एक बंदर था। इब्न बतूता ने वहीं से अपने चलने का हाल लिखा है, और कहा है कि एक जहाज़ में साठ चप्पू थे। लड़ाई के समय जहाज़ पर छत डाल लेते थे जिससे चप्पू वालों को पत्थर नहीं लग सकता था। जाकर नामी जहाज़ में मैं सवार था। उसमें पचास बाण चलानेवाले और पचास हबशी सिपाही थे।

१२–चीन में बाँस [पृष्ठ ३५

चीन में बाँस बहुत ही ज्यादा होता है और बहुत ही जल्दी

बढ़ता है। बाँस की एक डाली थोड़े ही वर्षों में बाँसों का झुंड बन जाती है। चीन के निवासी भी इसका प्रयोग इतने कामों में करते हैं कि उनकी गणना भी बहुत कठिन है। बाँस में यदि फूल आजाता है और उसमें बीज पड़ जाता है तो वह स्वयं सूख जाता है। अतः बाँस की पुरानी तथा पकी डालियों की बराबर काट छाँट होती रहे और उसमें फूलफल न लगने पावें तो चीन में बाँस के पेड़ सैंकड़ों वर्ष तक रह सकते हैं। पुराने बाँसों के जोड़ों के भीतर से 'बंसलोचन' निकलता है जो भारत में कई रोगों की औषधियों में प्रयोग किया जाता है। चीनी लोग इसको प्रायः प्रत्येक रोग के निमित्त बर्तते हैं।

एक लेखक का मत है कि चीन में बाँस साठ प्रकार का होता है। कोई रंग में पीला, कोई हरा और कोई काला होता है। कोई कोई बाँस पचास हाथ तक ऊँचा बढ़ता है और नीचे के भाग का घेरा एक गज़ तक होता है। इब्न बतूता कहता है कि चीन में थाल भी बड़ा अनोखा बनाते हैं। थाल के बनाने में बाँस के टुकड़े बड़ी चतुराई से जोड़े जाते हैं और लाल चमकीली गोंद से उसको रँगते हैं। दस थाल एक दूसरे पर रक्खे जाते हैं, परंतु ये इतने पतले होते हैं कि देखनेवाले को एक ही थाल दिखाई पड़ता है। एक ऊपरी ढकना इन सभों को ढाँक लेता है। बाँस की रकाबियाँ ऐसी विचित्र बनती हैं कि ऊपर से फेंक देने पर भी नहीं टूटतीं। गर्म भोजन यदि उनमें डाल दिया जाय तो वह न तो ऐंठती ही

हैं, न उनका रंग ही बदलता है। इन रकाबियों को लोग हिंदुस्तान, ख़ुरासान तथा अन्य देशों में लेजाते हैं।

१३-कोलम

[पृष्ठ ३८

कोलममली का नाम केवल 'कोलम' ही था। यह मलाबार के किनारे है, इस कारण ही शायद कोलममली लिखा है। इसकी आबादी पंद्रह हज़ार के लगभग है। शायद अंग्रेज़ो छावनी भी यहाँ है। अबुलफ़िदा नेइसको मिर्च के देश का अंतिम नगर कहा है और लिखा है कि इस नगर में एक अति सुंदर मसजिद और एक बाज़ार मुसलमानों का है। प्राचीन काल में फारस और चीन के व्यापार का यह नगर बड़ा भारी केंद्र था। सन् १५०० ई० तक कोलम व्यापार का एक बड़ा भारी प्रधान नगर रहा। उसके बाद इसकी अवस्था गिरती ही गई।

चौदहवीं शताब्दी के मध्य में कोलम जैसी अवस्था में था उसकी बाबत इब्न बतूता के लेख से बहुत कुछ मालूम हो सकता है। इब्न बतूता अपनी यात्रा का हाल देते हुए लिखता है कि मलाबार में यह नगर सबसे अधिक सुंदर है। बाज़ार बहुत अच्छे हैं। वहाँ के सौदागरों को सूली कहते हैं। वे बड़े धनाढ्य हैं। बाज़ सौदागर जहाज़ का जहाज़ भरा हुआ ख़रीद लेते हैं और अपने घर में व्यापार के लिये रख लेते हैं। मुसलमान सौदागर भी इस नगर में बहुत हैं।

मुसलमानों की इस नगर में बड़ी इज़्ज़त है। इस नगर की जामामसजिद भी विचित्र है। मलाबार के जितने नगर हैं उनमें से यह नगर ही चीन से सब से अधिक निकट है। इसी कारण चीन के बहुत से लोग यहीं सफ़र करने आते हैं।

कोलम तो एक नगर अवश्य ही था। किंतु इब्न बतूता के समय अर्थात् चौदहवीं शताब्दी ई० में भी कोलम के नाम से एक छोटा सा राज्य भी था जो न्याय का आदर्श था। इब्न बतूता राजा का नाम तिरोरी लिखता है और कहता है कि वह मुसलमानों का बड़ा आदर करता है। चोरों और दुष्टों के निमित्त बड़ा क्रूर है। कोलम में मैंने देखा कि एक इराक़ निवासी ने तीर से एक मनुष्य को मार डाला और आऊजी के घर में जा घुसा। आऊजी बड़े धनाढ्य थे। लोगों ने विचार किया कि मृतक को गाड़ देवें। परंतु राजा के प्रधान दीवान ने लोगों को ऐसा करने से रोका और कहा कि घातक जब तक हमें दे न दिया जायगा मृतक गाड़ा नहीं जा सकता। मृतक का शव आऊजी के गृह पर रक्खा गया। जब उसमें दुर्गंध आने लगी तब आऊजी ने घातक को राजा के हवाले किया और कहा कि मृतक के वारिसों को धन दिला दिया जाय और घातक का प्राणघात न किया जाय। राजा के कर्मचारियों ने ऐसा करने से इनकार किया। घातक को जब मरवा डाला तब मृतक गाड़ा गया।

कहा जाता है कि कोलम का राजा एक बार शहर के बाहर सवार होकर जाता था, बागों के बीच से गुज़रता था। उसके साथ उसका दामाद था। वह भी किसी राजा का पुत्र था। उसने आम का एक फल उठा लिया जो कि किसी वृक्ष के नीचे पड़ा था। राजा उसकी ओर देख रहा था। राजा ने हुक्म दिया कि उसके दो भाग कर दिए जाँय, एक भाग मार्ग के एक ओर दूसरा दूसरी ओर रखा जावे। इसी प्रकार आम के भी दो भाग किए गए। वे भी पृथक् पृथक् दोनों ओर रख दिए गए ताकि दर्शक लोग शिक्षा ग्रहण करें।

मार्को पोलो ने भी अपने भ्रमण-वृत्तांत में कोलम की बाबत कुछ लिखा है। कोलम नगर इस समय के ट्रावनकोर राज्य के अंतर्गत है। इसको अंग्रेजी में किलोन कहते हैं। दक्षिण कोलम्ब संवत् का भी संबंध इस नगर से है।

१४–चीन में रेशम [पृष्ठ ४६

रेशम चीन में प्राचीन काल से ही बहुत होता है। कई भागों में तो बहुत ही ज्यादा होता है परंतु कोई भाग ऐसा नहीं है जिसमें थोड़ा बहुत रेशम न होता हो। जिस प्रकार चीनी मिट्टी के पात्र बनाने तथा दस्ती तस्वीर खींचने में चीनियों से बढ़कर कोई न हो सका उसी प्रकार रेशम के तैयार करने में भी चीनियों से कोई भी बाज़ी नहीं ले जा सका। चीन के ऐतिहासिक कहते हैं कि सन् ईसवी से लगभग बाईस

सौ वर्ष पहले भी चीन में रेशम का चलन था। कुछ लोगों का कथन है कि सम्राट हवानगी की राजेश्वरी ने ही सबसे पहले रेशम तैयार किया था और कहते हैं कि यह सम्राट सन् ईसवी से लगभग दो हज़ार छः सौ वर्ष पहले हुआ है। इस राजेश्वरी की पूजा चीन में 'देवी' के समान होती है।

चीन से बहुत सा रेशम दूसरे देशों में जाता है। इस कारण अब पहले के समान सस्ता नहीं रहा, परंतु आज भी चीन में रेशम बहुत ज्यादा बर्ता जाता है। अब से लगभग छः सौ वर्ष पहले चीन में रेशम की जो दशा थी उसकी बाबत इब्न बतूता कहता है कि चीन के दुखी और दरिद्र भी रेशमी कपड़े पहिनते हैं। यदि अन्य देशों के व्यापारी इसको न ख़रीदते तो इससे अधिक तुच्छ वस्तु चीन में और कोई न होती। रुई के एक वस्त्र के बदले में रेशम के कई वस्त्र आते हैं। चीन के प्रधान नगर पेकिन का हाल लिखते हुए मार्को पोलो कहता है कि प्रत्येक दिन एक हज़ार गाड़ियाँ रेशम से लदी हुई इस नगर में आती हैं। सन् १८४४ ई० में फ़्रांस की ओर से एक कमीशन चीन में भेजा गया था। उसने रेशम के विषय में बहुत सी बातें खोज करके लिखी हैं। सच तो यह है कि रेशम का कीड़ा पत्तियों के साथ चिपटा रहता है और खाता रहता है। इस कारण लोगों को कीड़ों के पालने में कुछ कष्ट उठाना नहीं पड़ता। परंतु कीड़ों को तूत के पत्ते खिला कर जो रेशम तैयार किया जाता है वह मज़बूती और चमक दोनों

ही में सर्वश्रेष्ठ होता है और जो रेशम अन्य पत्रों को खिलाकर तैयार किया जाता है वह वास्तव में मोटा, बेचमक और कड़ा भी होता है।

१५–सेना में घोड़ों की अधिकता [पृष्ठ ५०

लड़ाई के निमित्त घोड़ों की उपयोगिता प्राचीन काल से पाई जाती है। सम्राट सिकंदर के मुकाबिले में पोरस ४००० घोड़े लेकर समर भूमि में गया था। कन्नौज के राजा हर्ष के पास पहले केवल बीस हज़ार घोड़े थे। बाद को यह संख्या बढ़ाकर एक लाख कर दी गई थी। महाराजा चंद्रगुप्त की सेना में पहले अस्सी हज़ार घोड़े थे, बाद को इनका संख्या घटाकर तीस हज़ार कर दी गई थी। इसका कारण शायद यह था कि चंद्रगुप्त ने जंगी हाथियों की संख्या बहुत बढ़ा दी थी। सेना में हाथियों की प्रधानता तथा घोड़ों की गौणता ही हिंदू राजाओं की सेनाओं का यूनानी तथा मुसलमान जेताओं से हारने का एक प्रधान कारण थी। "अश्वा यस्य जयस्तस्य" पुरानी नीति है। आज कल भी युद्ध के लिये घोड़ों को जितना उपयोगी समझा जाता है वह किसीसे छिपा नहीं है।

१६–प्राचीन काल में हाथी [पृष्ठ ५०

इतिहास बतलाते हैं कि राजा पोरस जब सम्राट सिकंदर के साथ लड़ने के लिये युद्धक्षेत्र में गया था तो उसके साथ

चार हज़ार सवार, तीस हज़ार पैदल सिपाही तथा तीन सौ रथों के सिवा दो सौ बड़े बड़े जंगी हाथी भी थे। महाराजा चंद्रगुप्त की सेना में पहले छः हज़ार जंगी हाथी थे। बाद को उनकी संख्या बढ़ाकर नौ हज़ार कर दी गई थी। कन्नौज के राजा हर्ष की सेना में पाँच हज़ार हाथी थे परंतु बाद को उनकी संख्या बढ़ाकर पूरे साठ हज़ार तक पहुँचा दी गई थी।

युद्ध के हाथी ज़िरह-बख़्तर से ढके रहते थे। उनके दाँतों में तेज़ नुकीला लोहा लगा दिया जाता था। लड़ाई में उनका होना परम आवश्यक समझा जाता था। "इयं हि श्रीर्ये करिणः"। भारत के मुसलमान बादशाह भी कुछ न कुछ हाथी युद्धस्थल में अवश्य ले जाते थे। औरंगज़ेब जब अपने भाइयों से लड़ रहा था तब एक अवसर पर उसने आज्ञा की कि मेरे हाथी के पैर में जंजीर डाल दो। यह आज्ञा इस बात की सूचक है कि औरंगज़ेब ने दृढ़ निश्चय किया था कि चाहे जो कुछ हो किंतु मैं समरक्षेत्र से मुँह न मोड़ूँगा। भारत के शूरवीर कठिन से कठिन समय में भी रणक्षेत्र से मुँह मोड़ने के बदले रण भूमि में खेत होने को अति उत्तम जानते थे और इसपर बहुधा चलते भी थे। इसी नियम के अनुसार ही वास्तव में औरंगज़ेब की भी आज्ञा थी। मुसलमानों के पश्चात् युद्ध में हाथियों का रहा सहा चलन भी जाता रहा, यहाँ तक कि आजकल युद्ध के लिये हाथियों की कोई आवश्यकता ही नहीं समझी जाती।

१७–जुरुज़ अर्थात् गुर्जर देश (गुजरात) [पृष्ठ ५२

प्राचीन गुजरात अर्थात गुर्जर देश की जो सीमा थी उसका एक बड़ा भाग यदि वर्तमान राजपुताना के अंतर्गत अथवा मरुस्थल था तो उसका नाम सुलैमान ने जो जुरुज़(جرز)लिखा है संभवत: उसका कारण यह हो कि अरबी में ऐसी भूमि को जुरुज़ कहते हैं जो उपजाऊ न हो, और जिसमें घास भी न होता हो। अत: सुलैमान ने देश का नाम अरबी में आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्तन के पश्चात् लिखने के बदले ठेठ अरबी शब्द का लिखना ही अधिक उचित समझा हो, क्योंकि जुरुज़ नाम देश के निमित्त सर्वथा अनुकूल है। अथवा निम्नलिखित समाधान हो सकता है।

ज्ञात रहे कि अरबी में केवल बिंदी के हेर-फेर से पाठ तथा अर्थ में बड़ा भारी अंतर हो जाता है। म० लैंगले द्वारा संपादित मूल अरबी सामग्री में एक शब्द जुर्ज़ है। वह इ० रैनौडो की दृष्टि में 'ह्ज़र' है, पर म० रीनो के विचार से 'जेरज़' है। मैं समझता हूँ कि इ० रेनौडो का 'जेरज़'(جرز) पाठ न्यून परिवर्तन से बहुत ठीक ठहरता है। वास्तविक बात यह है कि ज़बर, ज़ेर और पेश अर्थात अ, इ, और उ की मात्रा न होने पर प्रत्येक अरबी शब्द का उच्चारण कई प्रकार से हो सकता है। ऐसी अवस्था में संभवत: कहा जा सकता है कि 'जेरज़' शब्द 'जुर्ज़' हो और यह 'गुर्जर' शब्द से बना हो।

संस्कृत में भी गुजरात देश को 'गुर्जर देश' कहा जाता है। अब यह जानना चाहिए कि गाफ़ (ग) अक्षर अरबी में बहुधा जीम (ज) से बदल जाता है। जैसे 'लगाम' शब्द बदलकर अरबी में 'लजाम' हो जाता है। इस प्रकार 'गुर्जर' शब्द का 'ग' अक्षर बदलकर 'ज' बना हो और अब दो 'ज' एक साथ आ पड़ते हैं, इस बात को अच्छा न जान कर दूसरे 'ज' को 'ज़े' अर्थात् 'ज़' कर देना और शब्द को तनिक घटा देना ही अधिक उचित समझा गया हो। सुलैमान ने जो 'जुर्ज़' देश लिखा है निर्विवाद रूप से उसका अभिप्राय सर्वथा गुजरात देश से ही है। इस बात के अनुमोदन में यह भी कहना अनुचित नहीं कि विदेशियों द्वारा दिए नाम प्रायः अनियमित रूप से बदल ही जाते हैं और कभी और के और होजाते हैं। कौन कह सकता है कि देहली अंग्रेज़ी में डेलही (Delhi) और मथुरा अंग्रेज़ी में मुट्रा (Muttra) आदि नाम अमुक नियम से हुए हैं ? मुसलमानों द्वारा जो नाम बदले गए हैं उनमें से उदाहरणार्थ कुछ ये हैं—कालीकट का क़ालकूत, मरहठा की मराता आदि।

१८—गैंडा

[पृष्ठ ५५

गैंडा एक शक्तिशाली वनचर है। उसकी ऊँचाई छः फुट से अधिक नहीं होती अर्थात् वह प्रायः गाय, भैंस से बड़ा तथा हाथी से छोटा होता है। उसकी खाल काली, कड़ियों

वाली और मोटी होती है। लोगों का कथन है कि तेज़ से तेज़ चाकू या तलवार उसपर कुछ असर नहीं कर सकती। प्राचीन काल में उसकी खाल से ढालें बनाई जाती थीं। यह जानवर जुगाली (पागुर) किया करता है, दलदलों और कीचड़ों में रहता है। क़ज़वीनी का मत है कि गेंडे का आकार हाथी के समान होता है। वह हाथी को सींग पर उठा लेता है। उसका सींग हाथी के पेट में उलझ जाता है और दोनों मर जाते हैं। परंतु यह बात बिल्कुल मिथ्या है कि उसमें और हाथी में स्वाभाविक बैर है। इब्न बतूता लिखता है कि गेंडा हाथी से छोटा होता है। परंतु सर हाथी के सर से कहीं बड़ा होता है। बाबर बादशाह ने अपनी 'तुज़क' में भी गेंडे का वर्णन किया है। कुछ लोगों का ख़याल है कि गेंडा मनुष्य पर अवश्य आक्रमण करता है। निस्संदेह लाल रंग से उसको बड़ी घृणा है। यदि कोई लाल वस्त्र धारण किए होता है तो वह उस पर आक्रमण किए बिना नहीं रहता।

अनेक लोग यही जानते हैं कि गेंडे के एक ही सींग होता है। परंतु वास्तविक बात यह है कि दो सींगवाले गेंडे भी होते हैं। दो सींगवाले गेंडे सुमात्रा, जावा में होते हैं। चटगाँव और ब्रह्मा में भी वे पाए जाते हैं। एक सींगवाला ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे आसाम देश में पाया जाता है। अफ्रीका में भी होता है। सींग की लंबाई चौदह इंच से अधिक नहीं होती। शुभाशा अंतरीप (Cape of Good Hope) के यात्री मिस्टर

कोलबन ने (अफ़्रीका के) गेंडे का सींग दो फुट का लिखा है । सींग को जब चौड़ाई में तराशते हैं तो उसमें बड़े विचित्र दृश्य दिखाई पड़ते हैं । सींग के भीतर हाथी, घोड़े और मुर्ग़े आदि की तसवीरें बनी हुई मिलती हैं । लोगों का मत है कि यदि गेंडे की सींग का बना हुआ प्याला हो और उसमें कोई ऐसी वस्तु डाल दी जाय जो कि विष हो अथवा विष से बनी हो तो प्याला उसी दम टूट जाता है ।

'मख़ज़नुलअदविय:' नामी वैद्यक ग्रंथ में लिखा है कि यदि किसी चाकू या छुरी में गेंडे के सींग का दस्ता लगा हुआ हो तो उसे विषैली चीज़ के समीप रखने से विष का असर जाता रहता है ।

मशहूर बात यह है कि गेंडे के एकही सींग हुआ करता है । संसार के अधिकांश भाग में एकही सींगवाला गेंडा पाया जाता है, परंतु केवल जावा, सुमात्रा टापू की ही भूमि ऐसी है जहां दो सींगवाला गेंडा होता है ।

१८—चीनी मिट्टी [पृष्ठ ६०

चीनी मिट्टी पहाड़ की मिट्टी होती है । आग में कोयले के समान जलती है । यह मिट्टी पत्थर में मिलाकर तीन दिनों तक जलाई जाती है । बाद को पानी छिड़कने से सब की सब मिट्टी बन जाती है, फिर यह सड़ाई जाती है । जो मिट्टी बहुत अच्छी होती है उसका ख़मीर पूरे एक मास में उठता है ।

साधारण मिट्टी दस दिनों में ही निकाल ली जाती है। फिर उसीसे नाना प्रकार के पात्र बनाए जाते हैं। पहले चीनी मिट्टी के पात्र चीन देश से ही सारे देशों में जाते थे। अब चीन के सिवा अन्य देशों में भी वे बनते हैं परंतु वर्तमान समय में अद्भुत तथा अनोखे आविष्कार होने पर भी चीनी मिट्टी के वैसे पात्र देखने सुनने में नहीं आते जैसे पात्रों का वर्णन लेखक ने किया है।

२०—चीन के मृतक [पृष्ठ ६२

चीन में मुर्दे आज कल भी बहुधा गाड़े ही जाते हैं। केवल बौद्ध-भिक्षुकों की लाश जलाई जाती है। अथवा कोई लाश पड़ी रह गई हो और सड़ गई हो तो वह भी जला ही दी जाती है। परंतु कुछ यात्रियों के लेखों से ऐसा पता चलता है कि चीनी लोग चौदहवीं शताब्दी में अपने मृतकों को अवश्य जलाते थे। अतः इब्न बतूता कहता है कि चीन के निवासी काफ़िर हैं, मूर्त्तियाँ पुजते हैं, मृतकों को हिंदुओं के समान जलाते हैं। इसी प्रकार मार्को पोलो का भी कथन है। मार्को पोलो ने लगभग सारे चीन का भ्रमण किया था।

चंगेज़ खां नामी बादशाह के नाम से लोग अपरिचित नहीं हैं। यह तुर्किस्तान देश का बादशाह था। इसने तथा इसके घरानेवालों ने चीन में सन् १२१५ से १३६८ ईसवी तक राज्य किया है। इसी घराने के कई बादशाह बड़े नामी हुए

हैं। इसी घराने के कई बादशाह ख़ाक़ान या क़ाग्रान भी कहे जाते हैं। इन लोगों के गाड़े जाने का वर्णन अनेक लेखकों ने बहुत विलक्षण किया है। मार्को पोलो ने लिखा है कि सारे क़ाग्रान चाहे सौ मंज़िल की दूरी पर मरें किंतु उन सभों की लाशें अलताई पहाड़ में ले जाते हैं और वहाँ उनको गाड़ते हैं। लाश के ले जाते समय जो मनुष्य मार्ग में मिलता है उसको मार डालते हैं; मनगू क़ाग्रान की लाश लेजाने के अवसर पर इस प्रकार तीस हज़ार मनुष्य मारे गए थे और उसकी लाश के साथ गाड़े गए थे। उनका विश्वास है कि ये सब लोग और घोड़े जो मृतक के साथ गाड़े जाते हैं दूसरे लोक में मृतक की सेवा करेंगे। (मिलाओ, अग्निहोत्री के साथ यज्ञपात्रों को जलाने की वैदिक चाल और सतीदाह तथा परिस्तरणी की प्रथा)।

रशीद-उद्दीन नामी लेखक कहता है कि चंगेज़खां की लाश ले जाते हुए जितने मनुष्य मिले उन सभों को क़तल किया गया। इनके सिवा चालीस अमीर और सुंदर लड़कियाँ और बहुत अच्छे अच्छे घोड़े भी साथ ही साथ गाड़े गए।

इब्न बतूता ने इस संबंध में विस्तारपूर्वक लिखा है। वह जब पेकिन में पहुँचा था उस समय क़ाग्रान (बादशाह) वहाँ नहीं था। युद्ध में गया था। वह कहता है कि लड़ाई में उसके मारे जाने का समाचार जब प्रधान नगर में पहुँचा तब सारा नगर सजाया गया। नौबत और नक़ारे (डंके) बजवाए गए।

एक मास तक नाच रंग होता रहा। इसके बाद मृतक बादशाह, उसके विशेष नौकर चाकर, भाई बंधु तथा संबंधियों की लाशें जो सौ के लगभग थीं वहां पहुँची। पृथ्वी के भीतर एक बड़ा मकान खोदा गया। उसमें अच्छे अच्छे फ़र्श बिछाए गए। उसके भीतर क़ाआन को उसके हथियारों समेत रक्खा गया। उसके सोने चांदी के बर्तन रक्खे गए। चार दासियाँ और छः दास भी उसी क़बर में रक्खे गए। और उनके पानी पीने के पात्र भी साथही साथ रख दिए गए। फिर ऊपर एक दरवाज़ा बनाकर उसको मिट्टी से बंद कर दिया और एक ऊँचा टीला उसपर बना दिया गया।

फिर चार घोड़े लाए गए और उसकी क़बर पर उनको इतना दौड़ाया कि वे थक कर खड़े हो गए। इसके बाद क़बर पर एक बड़ी लकड़ी गाड़ दी गई। फिर घोड़ों के पीछे से एक लकड़ी ठोंकी और उसको उनके मुँह की ओर निकाला तथा घोड़ों को उस बड़ी लकड़ी में लटका दिया। इसी प्रकार क़ाआन के निकट संबंधियों के लिये भी क़बरें बनाई गईं। उनके साथ उनके हथियार और घर के बर्तन रक्खे गए। प्रत्येक की क़बर पर तीन तीन घोड़े लटका दिए गए। इन संबंधियों की संख्या दस थी। अन्य शेष लोगों की क़बरों पर एक एक घोड़ा लटका दिया गया। उस दिन नगर के सारे स्त्री पुरुष, मुसलमान और काफ़िर, शोक का वस्त्र धारण किए हुए वहाँ उपस्थित थे।

काफ़िर सफ़ेद चादरें और मुसलमान सफ़ेद वस्त्र धारण

किए हुए थे। क़ाआन की बेगमें (रानियाँ) तथा कुछ विशेष लोग चालीस दिनों तक अपने ख़ेमों में क़ब्र पर रहे। कुछ लोग वहाँ पूरे साल भर रहे। वहाँ ऐक बाज़ार लग गया। जिस वस्तु की उन्हें आवश्यकता होती थी वह वहाँ बिका करती थी। ऐसी प्रथा इस समय (सूडान के सिवा) अन्य देश में नहीं है। हिंदू और चीनी अपने मृतकों को जलाते हैं, बाक़ी सारी जातियाँ अपने मृतकों को गाड़ती हैं किंतु किसी अन्य को उनके साथ गाड़ा नहीं जाता।

N'c

Travels — India
India — Travels

Cal'
19/3/76

Central Archaeological Library,
NEW DELHI. 9119

Call No. 910.40954/Sul/Mah

Author— Mahesh Prasad 'Sadhu'

Title— Sulaiman Saudagar Ka Yatra-Vivarana.

Borrower No.	Date of Issue	Date of Return

"A book that is shut is but a block"

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
GOVT. OF INDIA
Department of Archaeology
NEW DELHI.

Please help us to keep the book clean and moving.

S. B., 148. N. DELHI.